॥ श्रीः ॥

गणेशगीता ।

१०१

इति. पु. ५६५

कात्यायनगोत्रोद्भवकामेश्वरनाथसंस्कृतपाठ-
शालामुख्याध्यापकपण्डितज्वालाप्रसाद-
मिश्रकृतभाषाटीकासमलंकृता ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

❋ बम्बई. ❋

सन १९८५ सम्वत् २०४२

৭০৭

व्ययभार वृद्धि सहित मूल्य ८.०० रुपये

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय
Acc. 1108/9908

© सर्वाधिकार
प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

और प्रकाशक–मे. खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष श्रीवेंकटेश्वर
...ई-४, के लिये दे.स.शर्मा, मैनेजर, द्वारा श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस,
...बई-४. में मुद्रित ।

प्रस्तावना.

संसारमें जन्म ले जिस प्राणीने अपना परलोक न सुधारा उसका जीवन कुछ इसही जन्ममें नहीं किन्तु अनेक जन्म-पर्य्यन्त वृथा गया. यह प्रसिद्ध है कि अनेक योनि हैं परन्तु मुक्तिसाधनके लिये मनुष्यशरीरही है,यह शरीर पाकर मनुष्य ं भारसागरसे पार जानेके निमित्त मानों एक चरण नौकामें धर चुका. यदि दूसरे चरण रखनेका यत्न न किया तो फिर महाअंधकारमें पतित होता है। मुक्तिसाधनके निमित्त वेदान्त ग्रंथोंका विचार और उसके अनुसार कर्त्तव्य करना उचित है वेदान्तग्रंथोंमें सर्वथा ब्रह्मविद्याका प्रतिपादन किया है और उसके साधन वर्णन किये हैं जिनके श्रवण मनन निदिध्यासनसे महात्मा मुक्तिको प्राप्त होते हैं उन वेदान्तग्रंथोंमें सर्व शिरोमणि और विख्यात श्रीमद्भगवद्गीता है ऐसा कौन विद्वान् है जो इसका विचार न करताहो जिन्हें थोडाभी ज्ञान है वह स्त्रीपुरुष पूजामें इसका पाठ अवश्य करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता घर घर विराज रही है और उद्धार कर रही है ठीक उसीकी छायारूप श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत गणेशपुराणान्तर्गत एकादश अध्यायमें श्रीमद्गणेशगीता है जो वेदान्तका साररूप है। इसमें श्रीगणेशजी

और वरेण्यराजाका संवाद है जिसमें गणेशजीने राजाको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया है और उसके प्रभावसे राजा मुक्ति पदवीको प्राप्त हुआहै उसी गणेशगीताकी भाषाटीका श्रीयुत परमगुणग्राही वैश्यवंशदिवाकर सेठजी श्रीखेमराज-श्रीकृष्ण-दासजीकी आज्ञासे सरल भाषामें जो सबकी समझमें आसके किया है और अक्षरार्थ स्पष्टरीतिसे लिख दिया है जिस्से जिन्हें पढनेका थोडाभी ज्ञान है वह भली प्रकार समझ सकें और तदनुकूल आचरणकर शान्ति लाभ करैं. यद्यपि यह ग्रंथ छोटाहै परन्तु सांख्ययोगवेदान्तका सार इसमें मथकर श्रीगणेशजीने वर्णन कियाहै इसके अनुसार कर्त्तव्य करनेसे परम शान्तिलाभ होती है। इसके देखनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि ब्रह्ममय होनेसे क्या दशा होजाती है और वह किस प्रकारके वचन कहता है यह सब कुछ भगवान् गणेशजीके वचनोंने स्पष्ट कर दिया है जो गणेशजीके भक्तोंका सर्वस्व है. महात्माओंसे निवेदन है कि इसका अवलोकनकर मेरे परिश्रमको सफल कीजिये और दृष्टिदोषसे कहीं त्रुटि रहगई हो उसे क्षमा कीजिये कारण कि सर्वज्ञ तो परमेश्वर है ॥

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र
मुहल्ला दिनदारपुरा,
मुरादाबाद.

॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

गणेशगीता

भाषाटीका सहित

दोहा-विघ्नहरण मंगलकरण, शरण सुखददातार ॥
श्रीगणेश पदकमलयुग, वन्दौं वारंवार ॥ १ ॥
श्लोक-ब्रह्माणमथ विष्णुं च शिवं गणपतिं तथा ॥
अम्बिकां शारदां चापि वन्दे विघ्नोपशांतये ॥१॥

शुक उवाच ।

एवमेव पुरा पृष्टः शौनकेन महात्मना ॥
स सूतः कथयामास गीतां व्यासमुखाच्छ्रुताम् १

इसीप्रकारसे पूर्वकालमें महात्मा शौनकके पूछनेपर सूत-
जीने व्यासजीके मुखसे श्रवण कीहुई गीताको वर्णन कियाथा १

सूत उवाच ।

अष्टादशपुराणोक्तममृतं प्राशितं त्वया ॥
ततोऽतिरसवत्पातुमिच्छाम्यमृतमुत्तमम् ॥२॥

सूतजी बोले हे भगवन् ! वेदव्यासजी आपने अष्टादश पुरा-
णका साररूप अमृत मुझे पान कराया, परन्तु अब उससेभी
अधिक रसीले उत्तम अमृतपान करनेकी मुझे इच्छा है ॥२॥

येनामृतमयो भूत्वा पुमान्ब्रह्मामृतं यतः ॥
योगामृतं महाभाग तन्मे करुणया वद ॥३॥

जिस अमृतको पानकर योगी ब्रह्मरूपको प्राप्त होजाते हैं
हे महाभाग ! वह कृपाकर आप मुझसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

व्यास उवाच ।

अथ गीतां प्रवक्ष्यामि योगमार्गप्रकाशिनीम् ।
नियुक्ता पृच्छते सूत राज्ञे गजमुखेन या ॥४॥

व्यासजी बोले हे सूतजी ! योग मार्गकी प्रकाश करने-
वाली गीताका तुमसे वर्णन करताहूं कि जिसको वरेण्य

राजाके पूछनेपर सम्पूर्ण विघ्नोंके नाशक गणेशजीने कहाथा ॥ ४ ॥

वरेण्य उवाच ।

विघ्नेश्वर महाबाहो सर्वविद्याविशारद ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ योगं मे वक्तुमर्हसि ॥५॥

वरेण्य राजा बोला कि हे विघ्न दूर करने हारे ! हे महाभुज ! हे सर्व विद्याओंके पंडित ! हे संपूर्ण शास्त्रके तत्त्वको जानने वाले, आप मुझसे योगमार्गका वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥

श्रीगजानन उवाच ॥

सम्यग्व्यवसिता राजन्मतिस्तेऽनुग्रहान्मम ॥
शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप ॥६॥

श्रीभगवान् बोले.राजन्! मेरी कृपासे तुम्हारी बुद्धि निर्मल और शास्त्रको ग्रहण करनेवाली है, सुनो मैं योगाऽमृत गीता तुमसे कहताहूं ॥ ६ ॥

न योगं योगमित्याहुर्योगो योगो न च श्रियः ॥
न योगो विषयैर्योगो न च मात्रादिभिस्तथा ॥७॥

"योग" इस शब्दकाही नाम योग नहीं, लक्ष्मीकी प्राप्ति होनेका नाम योग नहीं, विषय सुखकी प्राप्ति होनेका

नाम योग नहीं, इंद्रिय सम्पन्न होनेका नाम योग नहीं है ॥ ७ ॥

योगो यः पितृमात्रादेर्न स योगो नराधिप ॥
यो योगो बन्धुपुत्रादेर्यश्चाष्टभूतिभिः सह ॥८॥

हे राजन् ! माता पिताके समागमका नाम योग नही, आठ प्रकारकी सिद्धि और बंधुपुत्रादिकी प्राप्तिका नामभी योग नहीं है ॥ ८ ॥

न स योगः स्त्रिया योगो जगदद्भुतरूपया ॥
राज्ययोगश्च नो योगो न योगो गजवाजिभिः९॥

अत्यन्त रूपवती स्त्रीकी प्राप्तिका नाम योग नहीं है, राज्यकी प्राप्ति तथा हाथी घोडेकी प्राप्तिका नाम योग नहीं है ॥ ९ ॥

योगो नेन्द्रपदस्यापि योगो योगार्थिनः प्रियः॥
योगो यःसत्यलोकस्य न स योगो मतो मम१०

इन्द्रपदकी प्राप्तिका नाम योग नहीं है, योगद्वारा प्रिय सिद्धिकी इच्छा करनेका नाम योग नहीं है, सत्यलोककी प्राप्तिकोभी मैं योग नहीं मानता ॥ १० ॥

शैवस्य योगो नो योगो वैष्णवस्य पदस्य यः ॥
न योगो भूप सूर्य्यत्वं चन्द्रत्वं न कुबेरता॥११॥

शिवपदकी प्राप्तिहोनी, वैष्णवपदकी प्राप्तिहोनी उसका भी नाम योग नहीं, हे राजन्! सूर्य चंद्र और कुबेरके पदकी प्राप्ति होनेकाभी नाम योग नहीं ॥ ११ ॥

नानिलत्वं नानलत्वं नामरत्वं न कालता ॥
न वारुण्यं न नैर्ऋत्यं योगो न सार्वभौमता॥१२॥

वायुस्वरूप, अग्निस्वरूप, देवस्वरूप, कालस्वरूप, वरुणस्वरूप, निर्ऋतिस्वरूप, सम्पूर्ण पृथ्वीके राजपानेका नाम भी योग नहीं है ॥ १२ ॥

योगं नानाविधं भूप युञ्जन्ति ज्ञानिनस्ततम् ॥
भवंति वितृषा लोके जिताहारा विरेतसः ॥१३॥

हे राजन्! योग अनेक प्रकारका है, परन्तु योग वही है, जिसको प्राप्त होकर ज्ञानी लोग संसारसे विरक्त होते हैं तथा आहार जीतकर इच्छा रहित होते हैं ॥ १३ ॥

पावयन्त्यखिलांल्लोकान्वशीकृतजगत्त्रयाः ॥
करुणापूर्णहृदया बोधयन्त्यपि कांश्चन ॥१४॥

ज्ञानीलोग तीनों जगत्को अपने वशमें करके सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हैं, उनका हृदय दयासे पूर्ण होता है, वह किसीको बोधभी करते हैं ॥ १४ ॥

जीवन्मुक्ता ह्रदे मग्नाः परमानन्दरूपिणी ॥
निमील्याक्षीणि पश्यंतः परं ब्रह्म हृदिस्थितम् १५

वह जीवनमुक्त होकर परमानन्दरूपी पदमें मग्न होते हैं, और नेत्रमूंदकर हृदयमें स्थित परब्रह्मका दर्शन करते हैं॥१५॥

ध्यायन्तः परमं ब्रह्म चित्ते योगवशीकृतम् ॥
भूतानि स्वात्मना तुल्यं सर्वाणि गणयन्ति ते १६

योगसे वशीभूत किये चित्तमें परब्रह्मका ध्यान करते हैं, सम्पूर्ण प्राणियोंको ज्ञानी अपनी तुल्य जानते हैं ॥ १६ ॥

येन केनचिदाच्छिन्ना येनकेनचिदाहताः ॥
येन केन चिदाकृष्टा येन केनचिदाश्रिताः ॥१७॥

कहीं किसी कारणसे आच्छन्न कहीं किसीसे ताडित, कहीं किसीसे आकर्षित, कहीं किसीसे आश्रित ॥ १७ ॥

करुणापूर्णहृदया भ्रमन्ति धरणीतले ॥
अनुग्रहाय लोकानां जितक्रोधा जितेंद्रियाः॥१८॥

दयापूर्ण हृदय होकर पृथ्वीमें भ्रमण करते हैं, क्रोधको जीते जितेन्द्रिय हुए, लोकोंपर अनुग्रह करनेको विचरते हैं १८

देहमात्रभृतो भूप समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥
एतादृशा महाभाग्याःस्युश्चक्षुर्गोचराःप्रिय॥१९॥

हे राजन्! वे केवल देहमात्रकोही धारण करनेहारे, मट्टी, पत्थर सुवर्णमें समान दृष्टि करनेवाले, इस प्रकारके महाभाग पुरुष जिस योगके द्वारा दृष्टिगोचर होजाते हैं ॥ १९ ॥

तमिदानीमहं वक्ष्ये शृणु योगमनुत्तमम् ॥
श्रुत्वा यं मुच्यते जन्तुःपापेभ्यो भवसागरात्२०

उस श्रेष्ठ योगको मैं तुमसे इस समय कहता हूं जिसके श्रवण करनेसे यह प्राणी पापोंसे और भवसागरसे पार हो जाता है ॥ २० ॥

शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्यें मयि नराधिप॥
याऽभेदबुद्धिर्योगःस सम्यग्योगो मतो मम २१॥

हे राजन्! शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझमें जो अभेद बुद्धि करनी है उसीका नाम मैं यथार्थ योग मानताहूं ॥२१॥

अहमेव जगद्यस्मात्सृजामि पालयामि च ॥
कृत्वा नानाविधं वेषं संहरामि स्वलीलया २२॥

मैंही इस जगत्की उत्पत्ति पालन और संहार अपनी लीलासेही अनेक वेषधारणपूर्वक करताहूं ॥ २२ ॥

अहमेव महाविष्णुरहमेव सदाशिवः ॥
अहमेव महाशक्तिरहमेवार्यमा प्रिय ॥ २३ ॥

मैंही महाविष्णु, मैंही सदाशिव, मैंही महाशक्ति और मैंही सूर्य और यम हूं ॥ २३ ॥

अहमेको नृणां नाथो जातः पञ्चविधः पुरा ॥
अज्ञानान्मां न जानन्ति जगत्कारणकारणम् २४

मैंही एक मनुष्योंका स्वामी, इन पांच प्रकारसे पूर्वकालमें उत्पन्न हुआहूं, मैं जगत्की कारण मायाका भी कारणहूं मुझको अज्ञानी लोग नहीं जानते ॥ २४ ॥

मत्तोऽग्निरापो धरणी मत्त आकाशमारुतौ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपाला दिशो दश२५॥

मुझहीसे अग्नि जल आकाश धरणी पवन ब्रह्मा विष्णु रुद्र लोकपाल दशों दिशा उत्पन्न हुई हैं ॥ २५ ॥

वसवो मुनयो गावो मनवः पशवोऽपि च ॥
सरितः सागरा यक्षा वृक्षाः पक्षिगणा अपि२६॥

इसी प्रकार आठ वसु, मुनि, गौ, मनु, पशु, नदी, समुद्र, यज्ञ, वृक्ष, पक्षियोंके समूह ॥ २६ ॥

तथैकविंशतिः स्वर्गा नागाः सप्त वनानि च ॥
मनुष्याःपर्वताःसाध्याःसिद्धा रक्षोगणास्तथा२७

इक्कीस स्वर्ग, सात नाग, वन मनुष्य पर्वत साध्य सिद्ध राक्षस इत्यादिक सब मुझसे हुए हैं ॥ २७ ॥

अहं साक्षी जगच्चक्षुरलिप्तः सर्वकर्मभिः ॥
अविकारोऽप्रमेयोऽहमव्यक्तो विश्वगोऽव्ययः २८

मैंही सबका साक्षी हूं तथा सब जगत्का नेत्र, सब कर्मोंसे अलिप्तहूं निर्विकार, अप्रमेय अर्थात् प्रमाणों द्वाराभी जाननेमें नहीं आता, अव्यक्त, सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त और अविनाशी हूं ॥ २८ ॥

अहमेव परं ब्रह्माव्ययानन्दात्मकं नृप ॥
मोहयत्यखिलान्माया श्रेष्ठान्मम नरानमून्॥२९

हे राजन्! मैंही परब्रह्म अव्यय आनन्दस्वरूप हूं मेरी माया सम्पूर्ण जगत्को तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकोभी मोहित करती है ॥२९॥

सर्वदा षड्विकारेषु तानियं योजयेद्भृशम् ॥
हित्वाजापटलं जन्तुरनेकैर्जन्मभिः शनैः ॥३०॥

जो माया सदा कामक्रोधादि छः विकारोंमें इन प्राणियोंको लगादेती है, योगसे जब शनैः शनैः अनेक जन्मके मायाके कपाट दूर हो जाते हैं ॥ ३० ॥

विरज्य विन्दति ब्रह्म विषयेषु सुबोधतः ॥
अच्छेद्यं शस्त्रसंघातैरदाह्यमनलेन च ॥ ३१ ॥

तब यह प्राणी विषयोंसे जागकर और उनसे विरक्तहो पर-ब्रह्मको जानते हैं, जो ब्रह्म शस्त्र समूहोंसे छेदन नहीं होसक्ता अग्निसे दग्ध नहीं होसक्ता ॥ ३१ ॥

अक्लेद्यं भूप भुवनैरशोष्यं मारुतेन च ॥
अवध्यं वध्यमानेऽपि शरीरेऽस्मिन्नराधिप ।३२।

जलसे गल नहीं सक्ता पवनसे सूख नहीं सकता, हे राजन् ! जो इस शरीरके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता वही ब्रह्म है ॥ ३२ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रशंसन्ति श्रुतीरिताम्॥
त्रयीवादरता मूढास्ततोऽन्यन्मन्वतेऽपि न ३३॥

वेदत्रयीमें प्रीति करनेहारे केवल कर्म करनेहारे मूढलोग श्रुतिकी कही हुई फल प्रतिपादक वाणीकीही प्रशंसा करते हैं दूसरी बातको नहीं मानते हैं ॥ ३३ ॥

कुर्वंति सततं कर्म जन्ममृत्युफलप्रदम् ॥
स्वर्गैश्वर्यरता ध्वस्तचेतना भोगबुद्धयः ॥३४॥

इसी कारण वे जन्म और मृत्युके फल देनेहारे कर्मोंको सदा करते रहते हैं वे स्वर्गके ऐश्वर्योंमेंही लगे रहते हैं, उन भोगबुद्धिवालोंकी चेतना नष्ट होजाती है ॥ ३४ ॥

सम्पादयंति ते भूप स्वात्मना निजबंधनम् ॥
संसारचक्रं युञ्जन्ति जडाः कर्मपरा नराः॥३५॥

हे राजन्! वे आपही अपने निमित्त बंधन बनाते हैं, मूढ और कर्मपरायण मनुष्य संसारचक्रमें पडते हैं ॥ ३५ ॥

यस्य यद्विहितं कर्म तत्कर्तव्यं मदर्पणम् ॥
ततोऽस्य कर्मबीजानामुच्छिन्नाः स्युर्महांकुराः३६

जिसको जो कर्म विधान किया है, वह मेरे अर्पण करना चाहिये, तब इन प्राणियोंके कर्मरूप बीजोंके महा अंकुर नष्ट हों ॥ ३६ ॥

चित्तशुद्धिश्च महती विज्ञानसाधिका भवेत् ॥
विज्ञानेन हि विज्ञानं परं ब्रह्म मुनीश्वरैः ॥३७॥

चित्तकी शुद्धि होनेसेही विज्ञानकी प्राप्ति होती है, विज्ञानके द्वाराही ऋषियोंने परब्रह्मको जाना है ॥ ३७ ॥

तस्मात्कर्माणि कुर्वीत बुद्धियुक्तो नराधिप ॥
न त्वकर्मा भवेत्कोऽपि स्वधर्मत्यागवांस्तथा ३८

हे राजन् ! इसकारण जो कर्मकरे वह बुद्धियुक्त है अर्थात् मेरे अर्पण करे, कारण कि जिस कर्मका त्याग होनेसे स्वधर्मका त्याग होता है वह त्याग उचित नहीं है ॥ ३८ ॥

जहाति यदि कर्माणि ततः सिद्धिं न विंदति ॥
आदौ ज्ञानेनाधिकारः कर्मण्येव स युज्यते३९॥

जो कर्मका त्याग करेगा तौ चित्तशुद्धि नहीं होगी, चित्तशुद्धि न होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी, और सिद्धिकीभी प्राप्ति नहीं होगी, विना चित्तशुद्धिके ज्ञानमें अधिकार नहीं है, इसकारण प्रथम आसक्तिरहित होकर कर्म करना उचित है ३९॥

कर्मणा शुद्धहृदयोऽभेदबुद्धिमुपैष्यति ॥
स च योगः समाख्यातोऽमृतत्वाय हि कल्पते४०

कर्मसे शुद्ध हृदय होकर अभेद बुद्धिको प्राप्त होता है, उसीका नाम योग है, जिससे प्राणी अमर होजाता है ॥ ४० ॥

योगमन्यं प्रवक्ष्यामि शृणु भूप तदुत्तमम् ॥
पशौ पुत्रे तथा मित्रे शत्रौ बन्धौ सुहृज्जने॥४१॥

हे राजन् ! मैं और भी उत्तम योग कहताहूं,तुम उसे सुनो, पशु, मित्र, पुत्र, शत्रु, बंधु तथा सज्जन पुरुष ॥ ४१ ॥

बहिर्दृष्ट्या च समया हृत्स्थयालोकयेत्पुमान् ॥
सुखे दुःखे तथाऽमर्षे हर्षे भीतौ समो भवेत्४२॥

इन सबमें समान दृष्टि करनी चाहिये, बाहर भीतर एकसी दृष्टि रखनी, सुख, दुःख, क्रोध, हर्ष, भय इनमें समान रहना चाहिये ॥ ४२ ॥

रोगाप्तौ चैव भोगाप्तौ वा जये विजयेऽपि च ॥
श्रियोऽयोगे च योगे च लाभालाभमृतावपि४३॥

रोगकी प्राप्ति हो, चाहे भोगकी प्राप्तिहो, जयहो, विजयहो लक्ष्मीकी प्राप्ति; अप्राप्ति, हानि,लाभ, जन्म, मरण, इन सबमें मनको समान रखना उचित है ॥ ४३ ॥

समो मां वस्तुजातेषु पश्यन्नन्तर्बहिः स्थितम् ॥
सूर्य्ये सोमे जले वह्नौ शिवे शक्तौ तथानिले४४

सम्पूर्ण वस्तुओंमें समान भावसे बाहर भीतर मुझे स्थित जानना, सूर्य, चन्द्रमा, जल, अग्नि, शिव, शक्ति, वायु॥४४॥

द्विजे ह्रदे महानद्यां तीर्थे क्षेत्रेऽघनाशिनि ॥
विष्णौ च सर्वदेवेषु तथा यक्षोरगेषु च ॥४५॥

ब्राह्मण, छोटे सरोवर, महानदी, तीर्थ पापहारी क्षेत्र, विष्णु, सम्पूर्ण देवता, यक्ष, उरग ॥ ४५ ॥

गन्धर्वेषु मनुष्येषु तथा तिर्यग्भवेषु च ॥
सततं मां हि यः पश्येत्सोऽयं योगविदुच्यते ४६

गन्धर्व, मनुष्य, तिरछे चलनेहारे जीव, इन सबमें जो मुझे सदा समान दृष्टिसे देखता है वही योगका जाननेहारा कहाता है ॥ ४६ ॥

संपराहृत्य स्वार्थेभ्य इन्द्रियाणि विवेकतः ॥
सर्वत्र समताबुद्धिः स योगो भूप मे मतः ॥४७॥

हे राजन् ! जो ज्ञानद्वारा इन्द्रियोंको स्वार्थसे हटाकर सर्वत्र समान बुद्धि रखता है, वही योग मानागया है ॥ ४७॥

आत्मानात्मविवेकेन या बुद्धिर्दैवयोगतः ॥
स्वधर्मासक्तचित्तस्य तद्योगो योग उच्यते॥४८॥

अपने धर्ममें आसक्त चित्त प्राणीकी दैवयोगसे जो आत्मा और अनात्माके विचारकी बुद्धि उत्पन्न होती है, उस बुद्धिके योगकाही नाम योग है ॥ ४८ ॥

धर्माधर्मौ जहातीह तया त्यक्त उभावपि ॥
अतो योगाय युञ्जीत योगो वैधेषु कौशलम् ४९

और उसी बुद्धिके न होनेसे यह प्राणी धर्म अधर्मका त्याग करता है, इसकारण योगमें बुद्धि लगानी उचित है, निष्काम कर्ममें कुशलता ही योग है ॥ ४९ ॥

धर्माधर्मफले त्यक्त्वा मनीषी विजितेन्द्रियः ॥
जन्मबन्धविनिर्मुक्तःस्थानं संयात्यनामयम् ५०

जितेन्द्रिय बुद्धिमान् धर्म और अधर्मके फलको त्यागन करके जन्म बन्धनसे मुक्त होकर अनामय (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

यदा ह्यज्ञानकालुष्यं जन्तोर्बुद्धिः क्रमिष्यति ॥
तदासौ याति वैराग्यं वेदवाक्यादिषु क्रमात् ५१

जब इस प्राणीकी बुद्धि मोहरूपी अविद्यासे रहित होगी तब क्रमसे इस प्राणीका श्रवणयोग्य वेदवाक्यादिकोंमें जो फल प्रतिपादन करते हैं उनमें क्रमसे वैराग्य होगा ॥ ५१ ॥

त्रयीविप्रतिपन्नस्य स्थाणुत्वं यास्यते यदा ॥
परात्मन्यचला बुद्धिस्तदासौ योगमाप्नुयात् ५२

जब तीनों वेदोंमें प्रतिपादन किये कर्मसे यह बुद्धि परमात्मामें लगकर निश्चल होजाय तब इस प्राणीको योगकी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

मानसानखिलान्कामान्यदा धीमांस्त्यजेत्प्रिय ।
स्वात्मनि स्वेन संतुष्टःस्थिरबुद्धिस्तदोच्यते ५३

हे प्रिय ! जब यह बुद्धिमान् मनके सम्पूर्ण कामोंको त्यागन कर दे, अपने आत्मामें आपहीसे संतुष्ट हो तब यह स्थिर-बुद्धि कहाता है ॥ ५३ ॥

वितृष्णः सर्वसौख्येषु नोद्विग्नो दुःखसंगमे ॥
गतसाध्वसरुड्रागः स्थिरबुद्धिस्तदोच्यते ॥५४॥

किसीप्रकारके भी संसारी सुखोंमें तृष्णा न करनी,दुःखमें उद्विग्न न होना, भय, क्रोध और राग न होना यही स्थिर-बुद्धिका लक्षण है ॥ ५४ ॥

यथाऽयं कमठोऽङ्गानि संकोचयति सर्वतः ॥
विषयेभ्यस्तथा खानि संकर्षेद्योगतत्परः ॥५५॥

जिसप्रकारसे कछुआ सब ओरसे अपने अंग सिकोड लेता है इसीप्रकारसे योगीको उचित है कि विषयोंसे इंद्रियोंको खींचे५५

व्यावर्तन्तेऽस्य विषयास्त्यक्ताहारस्यवर्ष्मिणः ॥
विना रागं च रागोऽपि दृष्ट्वा ब्रह्म विनश्यति५६

भोजन त्यागनेवालेके विषय नष्ट होजाते हैं परन्तु उनका

अनुभव बना रहता है परन्तु वैराग्यसे ब्रह्मकी प्राप्ति होनेसे वह राग भी नष्ट हो जाता है ॥ ५६ ॥

विपश्चियतते भूप स्थितिमास्थाय योगिनः ॥
मन्थयित्वेन्द्रियाण्यस्य हरंति बलतो मनः ५७

हे राजन् ! जिनके इन्द्रिय वशमें नहीं हैं, वे स्थिर प्रज्ञावाले नहीं होते हैं, इन्द्रियगण मोक्षके प्रयत्न करनेवाले विद्वान् पुरुषका भी मन हर लेती हैं,इसकारण इंद्रियोंको वशमें करनेका यत्न करना ॥ ५७ ॥

युक्तस्तानि वशे कृत्वा सर्वदा मत्परो भवेत् ॥
संयतानीन्द्रियाणीह यस्यासौ कृतधीर्मतः ५८॥

इन्द्रियोंको वशमें करके सदा योगीको मेरा परायण होना चाहिये, कारण कि जिसकी इन्द्रियें वशमें होगई हैं उसीको स्थिरप्रज्ञ कहते हैं ॥ ५८ ॥

चिन्तयानस्य विषयान्संगस्तेषूपजायते ॥
कामःसंजायते तस्मात्ततः क्रोधोऽभिवर्द्धते ५९॥

विषयोंकी चिन्ता करनेवाले पुरुषको उन सङ्गोंमें अनुराग होजाता है, आसक्तिसे कामना होती है, उससे क्रोधकी उत्पत्ति होती है ॥ ५९ ॥

क्रोधादज्ञानसंभूतिर्विभ्रमस्तु ततः स्मृतेः ॥
भ्रंशात्स्मृतेर्मतेर्ध्वंसस्तद्ध्वंसात्सोऽपि नश्यति६०

क्रोधसे अज्ञान और इससे स्मृतिभ्रंश होता है, स्मृति-भ्रंशसे बुद्धि नष्ट होती है, और बुद्धि नष्ट होनेसे यह प्राणी नष्ट होजाता है ॥ ६० ॥

विना द्वेषं च रागं च गोचरान्यस्तु स्वैश्चरेत् ॥
स्वाधीनहृदयो वश्यैः संतोषं स समृच्छति ६१॥

अनुराग और द्वेषसे रहित अपने वशमें आई इन्द्रियोंसे विषयोंका भोग करके भी चित्तको वशीभूत किये जन शान्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

त्रिविधस्यापि दुःखस्य संतोषं विलयो भवेत् ॥
प्रज्ञया संस्थितश्चायं प्रसन्नहृदयो भवेत् ॥६२॥

एक संतोषकी प्राप्ति होनेसे तीनों प्रकारके दुःख नष्ट होजाते हैं, इसीप्रकार स्थिरप्रज्ञावालेका मन प्रसन्न होजाता है ॥६२॥

विना प्रसादं न मतिर्विना मत्या न भावना ॥
विना तां न समो भूप विना तेन कुतः सुखम् ६३

विना चित्तप्रसन्न हुए बुद्धिकी प्राप्ति नहीं और बुद्धिके

विना श्रद्धा नहीं, श्रद्धाके विना शान्ति नहीं और शान्तिके विना सुख नहीं होता ॥ ६३ ॥

इंद्रियाश्वान्विचरतो विषयाननुवर्तते ॥
यन्मनस्तन्मतिं हन्यादप्सु नावं मरुद्यथा॥६४॥

पवन जिसप्रकार नावको जलमें डुबो देती है वैसेही मन विषयोंमें विचरनेवाले अवशीभूत इंद्रियरूपी घोडोंमेंसे जिसके अनुकूल चलता, वही उसकी प्रज्ञाको हर लेता है ॥ ६४ ॥

या रात्रिः सर्वभूतानां तस्यां निद्राति नैव सः॥
न स्वपंतीह ते यत्र ता रात्रिस्तस्य भूमिप ६५

अज्ञानसे आच्छादित सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो आत्म-ज्ञान रात्रि स्वरूप है, उसमें इन्द्रिय वश करनेहारे संयमी योगी जागते हैं, और जिस विषयबुद्धिमें संपूर्ण प्राणी जागते हैं, वह विषय भोग ज्ञानियोंके लिये रात्रि स्वरूप है ॥ ६५ ॥

सरितां पतिमायांति वनानि सर्वतो यथा ॥
आयांति यं तथा कामा न स शांतिं कचिल्लभेत् ६६

जिसप्रकारसे सब नदियें और जल समुद्रमें प्रवेश कर जाते हैं और उसकी तृप्ति नहीं होती, इसीप्रकार सब कामना पूर्ण होनेवालेको भी शान्ति नहीं होती ॥ ६६ ॥

अतस्तानीह संरुध्य सर्वतः खानि मानवः ॥
स्वस्वार्थेभ्यः प्रधावंति बुद्धिरस्य स्थिरा तदा ६७

इसकारण प्राणीको उचित है कि, सब प्रकारसे विषयोंकी ओर धावमान होती हुई इन्द्रियोंको वशमें करे, तब इसकी बुद्धि स्थिर हो ॥ ६७ ॥

ममताहंकृती त्यक्त्वा सर्वान्कामांश्च यस्त्यजेत् ॥
नित्यं ज्ञानरतो भूत्वा ज्ञानान्मुक्त स यास्यति॥

जो ममत्व अहंकार और सब कामनाओंका त्याग करताहै, नित्य ज्ञानमें मग्न रहताहै वह ज्ञानसे मुक्तिको प्राप्त होजाता है ६८

एवं ब्रह्मधियं भूप यो विजानाति दैवतः ॥
तुर्यामवस्थां प्राप्यापि जीवन्मुक्तिं प्रयास्यति ६९

ॐतत्सादीति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासुयोगामृतार्थशास्त्रे श्रीमन्महागणेशपुराणे उत्तरखण्डे बालचरिते गजाननवरेण्यसंवादे सांख्यसारार्थयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे राजन् ! जो दैवगतिसे इस ब्रह्मज्ञानयुक्त बुद्धिको प्राप्त हो जाता है वह तुर्या अवस्थाको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है ॥ ६९ ॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीमन्महागणेशपुराणे उत्तरखण्डे बालचरिते गजाननवरेण्यसंवादे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां सांख्यसारार्थयोगो-
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वरेण्य उवाच।

ज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठा द्वयं प्रोक्तं त्वया विभो।
अवधार्य वदैकं मे निःश्रेयसकरं नु किम् ॥ १ ॥

वरेण्यने कहा हे भगवन् ! ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ आपने दोनोंका वर्णन किया इसमें मुझे संदेह होता है, इसकारण आप दोनोंमें एक निश्चयकर जो कल्याणदायक हो सो कहिये ॥ १॥

गजानन उवाच।

अस्मिंश्चराचरे स्थित्यौ पुरोक्ते द्वे मया प्रिय ॥
सांख्यानां बुद्धियोगेन वैधयोगेन कर्मणाम् ॥२॥

श्रीगजानन बोले कि हे राजन् ! इस चराचर जगत्में दो प्रकारकी स्थिति है, ज्ञान योगसे सांख्य शास्त्र जाननेवालोंकी और कर्मयोगसे कर्मके अधिकारी चित्त शुद्धिरखनेवाले योगियोंकी ॥ २ ॥

अनारम्भेण वैधानां निष्क्रियः पुरुषो भवेत् ॥
न सिद्धिंयाति संत्यागात्केवलात्कर्मणो नृप॥३॥

कर्मोंके आरंभ न करनेसे यह पुरुष निष्क्रिय हो जाता है, हे राजन् ! केवल कर्मोंहीके त्यागनेसे सिद्धि नहीं होती ॥३॥

कदाचिदक्रियः कोऽपि क्षणं नैवावतिष्ठते ॥
अस्वतन्त्रः प्रकृतिजैर्गुणैः कर्म च कार्यते ॥४॥

किसी दशामें क्षणमात्रभी कर्मविना किये कोई नहीं रह सकता है,राग द्वेषादि स्वाभाविक गुण सबको ही अवश करके कर्म कराते हैं, तत्त्वज्ञान होनेसे प्रथम कर्म त्यागनेसे चित्तकी क्रिया नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

कर्मकारींद्रियग्रामं नियम्यास्ते स्मरन्पुमान् ॥
तद्गोचरान्मंदचित्तो धिगाचारः स भाष्यते ॥५॥

जो कर्म करनेवाला, इन्द्रियोंको मनहीं मनमें रोककर इन्द्रियोंके विषयोंका स्मरण करता है, उस दुरात्माको तुच्छ आचारवाला कहा जाता है ॥ ५ ॥

तद्ग्रामं संनियम्यादौ मनसा कर्म चारभेत् ॥
इंद्रियैः कर्मयोगं यो वितृष्णः स परो नृप ॥६॥

और जो मनसे इन्द्रियोंको संयम करके, कर्म इन्द्रियोंसे

कर्मयोगका अनुष्ठान करता है, वही फलकी कामना न करनेवाला ही श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

अकर्मणः श्रेष्ठतमं कर्मानीहाकृतं तु यत् ॥
वर्ष्मणः स्थितिरप्यस्याकर्मणो नैव सेत्स्यति७॥

कर्म न करनेसे फलकी कामना न करके कर्मका करना श्रेष्ठ है कारण कि सब कर्मोंसे रहित होनेसे शरीरयात्रा भी नहीं हो सकती ॥ ७ ॥

असमर्प्य निबध्यन्ते कर्म तेन जना मयि ॥
कुर्वीत सततं कर्मनाशोऽसंगो मदर्पणम् ॥८॥

प्राणी कर्मोंका फल मुझमें जो समर्पण नहीं करते, इसी कारण वे बंधनमें पडते हैं, इस कारणसे निष्काम कर्मका अनुष्ठान करना उचित है, और जो करो सब ईश्वरार्पण करो और असंग अर्थात् उनमें आसक्ति मत करो ॥ ८ ॥

मदर्थे यानि कर्माणि तानि बध्नन्ति न क्वचित्॥
सवासनमिदं कर्म बध्नाति देहिनं बलात् ॥९॥

जो कर्म मेरे निमित्त किये जाते हैं वे बन्धनके निमित्त नहीं होते, जो वासनापूर्वक कर्म हैं वे ही बलसे प्राणीको बांधते हैं ॥ ९ ॥

वर्णान्सृष्ट्वावदं चाहं सयज्ञांस्तान्पुरा प्रिय ॥
यज्ञेन ऋध्यतामेष कामदः कल्पवृक्षवत् ॥१०॥

पूर्व कालमें मैंने यज्ञरूपी नित्यकर्मकेही साथ साथ मनुष्योंको रचकर कहा-हे मनुष्यो ! तुम वृद्धिको प्राप्त हो, यह क्रिया तुम्हारी इष्ट सिद्धिकी देनेवाली हो ॥ १० ॥

सुरांश्चान्नेन प्रीणध्वं सुरास्ते प्रीणयन्तु वः ॥
लभत्वं परमं स्थानमन्योन्यप्रीणनात्स्थिरम् ११

तुम देवताओंको अन्नसे तृप्त करो, देवता तुमको वर्षा आदिसे प्रसन्न करेंगे, इसप्रकार परस्पर वृद्धि करते हुए तुम और देवता सब श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

इष्टा देवाः प्रदास्यन्ति भोगानिष्टान्सुतर्पिताः ॥
तैर्दत्तांस्तान्नरस्तेभ्योऽदत्त्वाभुङ्क्ते स तस्करः १२

देवता प्रसन्न होकर तुम्हारे मनोवांछित मनोरथोंको पूर्ण करेंगे, उन देवतोंके दिये पदार्थोंसे उनका आराधन किये विना जो भोग भोगता है वह चोर है ॥ १२ ॥

हुतावशिष्टभोक्तारो मुक्ताः स्युः सर्वपातकैः ॥
अदन्त्येनो महापापा आत्महेतोःपचन्ति ये १३

जो देवताका आराधनरूप यज्ञ करके अवशिष्ट अन्न

भोजन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होते हैं, और जो अपने निमित्त भोजन करते हैं, वे पापी मानो पापही भोजन करते हैं ॥ १३ ॥

ऊर्जो भवन्ति भूतानि देवादन्नस्य संभवः ॥
यज्ञाच्च देवसंभूतिस्तदुत्पत्तिश्च वैधतः ॥ १४ ॥

अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, और अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है और वर्षा यज्ञसे उत्पन्न होती है, और कर्मसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥

ब्रह्मणो वैधमुत्पन्नं मत्तो ब्रह्मसमुद्भवः ॥
अतोयज्ञेचविश्वस्मिन्स्थितं मांविद्धि भूमिप १५

कर्म ब्रह्मसे उत्पन्न होता है, इस कारण हे राजन् ! इस यज्ञमें और विश्वमें स्थित आप मुझे जानिये ॥ १५ ॥

संसृतीनां महाचक्रं क्रामितव्यं विचक्षणैः ॥
स मुदा प्रीणते भूपेन्द्रियक्रीडोऽधमो जनः १६॥

इस आवागमनरूपी संसारचक्रसे बुद्धिमानोंको पार जाना उचित है. हे राजन् ! जो प्राणी अधम है, वह इन्द्रियोंकी क्रीडासे सुख मानते हैं ॥ १६ ॥

अन्तरात्मनि यः प्रीत आत्मारामोऽखिलप्रियः॥
आत्मतृप्तो नरो यः स्यात्तस्यार्थो नैव विद्यते १७

जो अन्तरात्मामें प्रीति करनेवाले हैं, वही आत्माराम और सबके प्यारे हैं, जो प्राणी आत्मतृप्त हैं उन्हें किसी बातकी इच्छा नहीं रहती ॥ १७ ॥

कार्याकार्यकृतीनां स नैवाप्नोति शुभाशुभे ॥
किंचिदस्य न साध्यं स्यात्सर्वजंतुषु सर्वदा १८॥

इस प्रकारके प्राणी कार्याकार्य करके भी शुभ अशुभ फलको नहीं प्राप्त होते, यह कुछ करें अथवा न करें तोभी उनको कुछ प्रयोजन नहीं, सम्पूर्ण प्राणियोंमें इनका कोई भी प्रयोजनाधार नहीं, ऐसे पुरुषोंको कुछ साध्य नहीं ॥१८॥

अतोऽसक्ततया भूप कर्त्तव्यं कर्म जंतुभिः ॥
सक्तोऽगतिमवाप्नोति मामवाप्नोति तादृशः॥१९॥

इस कारण हे राजन् ! आसक्ति रहित होकर प्राणियोंको कर्म करना उचित है, जो आसक्त होताहै उसकी दुर्गति होती है, और अनासक्त मुझे प्राप्त हो जाताहै ॥ १९ ॥

परमां सिद्धिमापन्नाः पुरा राजर्षयो द्विजाः ॥
संग्रहाय हि लोकानां तादृशं कर्म चारभेत् २०॥

हे राजन् ! कर्म करनेसे बहुतसे राजर्षि परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं. लोक संग्रहके निमित्तही अनासक्त होकर कर्म करने उचित हैं ॥ २० ॥

श्रेयान्यत्कुरुते कर्म तत्करोत्यखिलो जनः ॥
मनुते यत्प्रमाणं स तदेवानुसरत्यसौ ॥२१॥

जो कर्म महत् पुरुष करते हैं, वही कर्म और सब करते हैं वह जिसका प्रमाण करते हैं, दूसरे भी उसीको मानते हैं ॥२१॥

विष्टपे मे न साध्योऽस्ति कश्चिदर्थो नराधिप ॥
अनालब्धश्च लब्धव्यःकुर्वे कर्म तथाप्यहम् २२॥

हे राजन् ! मुझे कोई वस्तु स्वर्गादिमें दुर्लभ नहीं है, और मैं कर्म करके किसी अलभ्य वस्तुको प्राप्त होनेकी भी इच्छा नहीं करताहूं ॥ २२ ॥

न कुर्वेऽहं यदा कर्म स्वतन्त्रोऽलसभावितः ॥
करिष्यन्ति मम ध्यानं सर्वे वर्णा महामते॥२३॥

और जो मैं आलसी और स्वतंत्र होकर कर्म न करूं तो सबही वर्ण कर्म छोडकर केवल मेरा ध्यानहीं करैं ॥ २३ ॥

भविष्यन्ति ततो लोका उच्छिन्नाः संप्रदायिनः॥
हंता स्यामस्य लोकस्य विधाता शंकरस्यच२४॥

हे महामतिमान् राजा ! तब मेरे ऐसा करनेसे सब वर्ण आचार भ्रष्ट हो जायँगे. इससे इस वर्णसंकरका करनेवाला भी मैं ही हूंगा ॥ २४ ॥

कामिनो हि सदा कामैरज्ञानात्कर्मकारिणः ॥
लोकानां संग्रहायैतद्विद्वान् कुर्यादसक्तधीः॥२५॥

जिस प्रकारसे कामनावाले अज्ञानसे सदा कर्म करते रहते हैं, इसीप्रकार विद्वान्को उचित है कि लोकसंग्रहके निमित्त आसक्ति रहित होकर कर्म करता रहे ॥ २५ ॥

विभिन्नत्वमतिं जह्यादज्ञानां कर्मचारिणाम् ॥
योगयुक्तः सर्वकर्माण्यर्पयेन्मयि कर्मकृत् ॥२६॥

अज्ञानसे कर्म करनेवालोंकी भेदबुद्धिको त्याग करै, योगयुक्त होकर कर्म करताहुआ वे सब कर्म मुझे अर्पण करदे ॥ २६ ॥

अविद्यागुणसाचिव्यात्कुर्वन्कर्माण्यतन्द्रितः ॥
अहंकाराद्भिन्नबुद्धिरहंकर्तेति योऽब्रवीत् ॥२७॥

हे राजन् ! सबही कर्म प्रकृतिके सत्त्वादि गुणोंने किये हैं, तथापि अहंकारसे मूढ होकर पुरुष अपनेको कर्ता मानता है२७

यस्तु वेत्त्यात्मनस्तत्त्वं विभागाद्गुणकर्मणोः ॥
करणं विषये वृत्तमिति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

जो कोई सत्वादि गुण तथा उनके कर्मोंके विभागको इस प्रकार जानते हैं, कि सत्वादि गुण आपअपने कार्योंमें वर्त्तमान हैं, तौ वह कर्ममें लिप्त नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

कुर्वंति सफलं कर्म गुणैस्त्रिभिर्विमोहिताः ॥
अविश्वस्तः स्वात्मद्रुहो विश्वविन्नैव लंघयेत् २९॥

सत, रज, तम इन तीन गुणोंसे मोहित हुए प्राणी फलकी इच्छासे कर्म करते हैं, उनका विश्वासी और आत्मद्रोहियोंको सर्वज्ञ पुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करे ॥ २९ ॥

नित्यं नैमित्तिकं तस्मान्मयि कर्मार्पयेद्बुधः ॥
त्यक्त्वाहंममताबुद्धिं परांगतिमवाप्नुयात्॥३०॥

इस कारण पण्डितको उचित है कि मुझहीमें नित्य नैमित्तिक कर्मको अर्पण करदे तो वह अहं और ममता बुद्धिको त्यागन करके परमगतिको प्राप्त हो जायगा ॥ ३० ॥

अनीर्ष्यन्तो भक्तिमन्तो ये मयोक्तमिदं शुभम्॥
अनुतिष्ठन्ति ये सर्वे मुक्तास्तेऽखिलकर्मभिः ३१

ईर्षा न करनेवाले भक्तिमान् मनुष्य मेरे कहे हुए इस शुभ मार्गको जो अनुष्ठान करते हैं, वे सब कर्मोंसे मुक्त हो जाते हैं ३१

ये चैव नानुतिष्ठन्ति त्वशुभा हतचेतसः ॥
ईर्ष्यमाणान्महामूढान्नष्टांस्तान्विद्धि मे रिपून् ३२

और जो अज्ञानसे चित्त नष्ट होनेके कारण इसका अनुष्ठान नहीं करते हैं, उन मूर्ख नष्ट अपवित्र और नष्ट बुद्धियोंको मेरा शत्रु जानो ॥ ३२ ॥

तुल्यं प्रकृत्या कुरुते कर्म यज्ज्ञानवानपि ॥
अनुयाति च तामेवाग्रहस्तत्र मुधा मतः ॥३३॥

जब ज्ञानवान् भी अपने स्वभावके अनुसार चेष्टा करता है तो अज्ञानीकी बातही क्या है, इस कारण सब जीव जब अपनी अपनी प्रकृतिको प्राप्त हैं, तो निग्रह कैसे करे ॥ ३३ ॥

कामश्चैव तथा क्रोधः खानामर्थेषु जायते ॥
नैतयोर्वश्यतां यायादस्य विध्वंसकौ यतः॥३४॥

कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियके निमित्त काम और क्रोध यह दोही स्थित हैं, इनके वशमें न होना चाहिये, कारण कि, यही प्राणीके शत्रुरूप हैं ॥ ३४ ॥

शस्तोऽगुणो निजो धर्मः सांगादन्यस्य धर्मतः॥
निजे तस्मिन्मृतिः श्रेयोऽपरत्र भयदः परः३५॥
अपना धर्म यदि निर्गुण हो तौ भी अच्छा है, और धर्म गुणयुक्त होनेसे भी भला नहीं, अपने धर्ममें मरना भला है, परन्तु परलोकमें भय देनेहारा दूसरेका धर्म श्रेष्ठ नहीं ॥ ३५ ॥

वरेण्य उवाच।

पुमान्यत्कुरुते पापं स हि केन नियुज्यते ॥
अकांक्षन्नपि हेरम्ब प्रेरितः प्रबलादिव ॥ ३६ ॥
वरेण्यने कहा हे गणेशजी ! यह जो प्राणी पाप करता है सो किसके द्वारा करता है, विषयोंका त्यागकर इच्छा नहीं करता हुआ भी जैसे कोई बलसे करावे. ऐसे प्रेरण किया हुआ पापाचरण करता है ॥ ३६ ॥

श्रीगजानन उवाच।

कामक्रोधौ महापापौ गुणद्वयसमुद्भवौ ॥
नयंतौ वश्यतां लोकान् विद्ध्येतौ द्वेषिणौ वरौ३७
श्रीगणेशजी बोले कि रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न हुए यह दो काम और क्रोधही महापापी लोगोंको अपने वशमें करते हैं, इन्ही दोनोंको तुम महा शत्रु जानो ॥ ३७ ॥

आवृणोति यथा माया जगद्बाष्पो जलं यथा ॥
वर्षामेघो यथाभानुं तद्वत्कामोऽखिलांश्च रुद्धः ३८

जिस प्रकारसे माया जगत्को ढकती है जैसे वाफ जलको आच्छादन करती है, वर्षा कालका मेघ जैसे सूर्यको ढकलेता है इसी प्रकार कामने सबको ढकलिया है ॥ ३८ ॥

प्रतिपत्तिमतो ज्ञानं छादितं सततं द्विषा ॥
इच्छात्मकेन तरसा दुष्पोषेण च शुष्मिणा ३९॥

वेगवान् पोषण करनेमें कठिण महाबली सदैव द्वेष करनेहारे इच्छात्मक कामनेही ज्ञानको ढक रक्खा है ॥ ३९ ॥

आश्रित्य बुद्धिमनसी इन्द्रियाणि स तिष्ठति ॥
तैरेवाच्छादितप्रज्ञो ज्ञानिनं मोहयत्यसौ ॥४०॥

यह काम बुद्धि और मन इन दो इन्द्रियोंके आश्रय होकर रहता है कामनाही इन्द्रियोंसे ज्ञानको आच्छादन करके देहधारीको मोहित करती है ॥ ४० ॥

तस्मान्नियम्य तान्यादौ स मनांसि नरो जयेत् ॥
ज्ञानविज्ञानयोः शांतिकरं पापं मनोभवम् ४१॥

इसकारण मनके सहित इन्द्रियोंको वश करके ज्ञान और विज्ञानके नाशकरनेवाले पापात्माकामको जीतो ॥ ४१ ॥

यतस्तानि पराण्याहुस्तेभ्यश्च परमं मनः ॥
ततोऽपिहि परा बुद्धिरात्मा बुद्धेः परो मतः॥४२॥

स्थूलसे इंद्रिय परे हैं, इन्द्रियोंसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, और बुद्धिसे परे परमात्मा है ॥ ४२ ॥

बुद्ध्यैवमात्मनात्मानं संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
हत्वा शत्रुं कामरूपं परं पदमवाप्नुयात् ॥४३॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगा-
मृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उत्तरखण्डे गजानन-
वरेण्यसंवादे कर्मयोगोनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार आत्मासे आत्माको जानकर आत्मासेही आत्माको अटल बनाकर कामरूपी शत्रुको मार परम पदको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थ-
शास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उत्तरखण्डे गजाननवरेण्यसंवादे
पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ शुभमस्तु ।

श्रीगजानन उवाच ।

पुरा सर्गादिसमये त्रैगुण्यं त्रितनूरुहम् ॥
निर्माय चैनमवदं विष्णवे योगमुत्तमम् ॥ १ ॥

श्रीगणेशजी बोले प्रथम सृष्टि उत्पन्न करनेके समय तीन गुणोंसे युक्त तीन शरीरमें रहनेहारा उत्तम योगको निर्माण करकै प्रथम विष्णुके निमित्त यह योग वर्णन किया था ॥१॥

अर्यम्णे सोऽब्रवीत्सोऽपि मनवे निजसूनवे ॥
ततः परंपरायातं विदुरेनं महर्षयः ॥ २ ॥

विष्णुने यही योग सूर्यसे कहा सूर्यने अपने पुत्र मनुसे कहा इसके उपरान्त परंपरासे प्राप्त हुए इस योगको महर्षि जानते रहे ॥ २ ॥

कालेन बहुना चायं नष्टः स्याच्चरमे युगे ॥
अश्रद्धेयो ह्यविश्वास्यो विगीतव्यश्च भूमिप ॥३॥

हे राजन् ! पिछले युगमें जब कि श्रद्धाहीन अविश्वासी और निन्दित जन हुए तब यह बहुत काल उपरान्त नष्ट हुआ था ३

एवं पुरातनं योगं श्रुतवानसि मन्मुखात् ॥
गुह्याद्गुह्यतरं वेदरहस्यं परमं शुभम् ॥ ४ ॥

यह अब फिर तुमने मेरे मुखसे पुरातन योगको सुना है यह गुप्तसे भी गुप्त अत्यन्त कल्याणकारक सम्पूर्ण वेदोंका सार है ॥ ४ ॥

वरेण्य उवाच ।

सांप्रतं चावतीर्णोऽसि गर्भतस्त्वं गजानन ॥
प्रोक्तवान्कथमेतं त्वं विष्णवे योगमुत्तमम् ॥५॥

वरेण्यराजा बोला हे गजानन ! इस समय आप गर्भसे तो उत्पन्न हुएहो,फिर तुमने विष्णुसे यह योग किसप्रकारसे वर्णन किया ॥ ५ ॥

गणेश उवाच ।

अनेकानि च ते जन्मान्यतीतानि ममापि च ॥
संस्मरे तानि सर्वाणि न स्मृतिस्तव वर्तते ॥६॥

गणेशजी बोले हे राजन् ! मेरे और तुम्हारे अनेक जन्म बीत चुके हैं, मैं उन्हें सबको जानता हूं, पर तुम नहीं जानते ॥६॥

मत्त एव महाबाहो जाता विष्ण्वादयः सुराः ॥
मय्येव च लयं यान्ति प्रलयेषु युगेयुगे ॥ ७ ॥

हे महाभुज ! मुझसेही विष्णुआदि देवता उत्पन्न हुए हैं, और युगयुगमें प्रलयके समय मुझमेंही लय होजाते हैं ॥ ७ ॥

अहमेव परो ब्रह्मा महारुद्रोऽहमेव च ॥
अहमेव जगत्सर्वं स्थावरं जंगमं च यत् ॥ ८ ॥

मैं ही श्रेष्ठब्रह्मा हूं, मैंही महारुद्र हूं, मैं ही स्थावर जंगमरूप सम्पूर्ण जगत हूं ॥ ८ ॥

अजोऽव्ययोऽहंभूतात्माऽनादिरीश्वर एव च ॥
आस्थाय त्रिगुणां मायां भवामि बहुयोनिषु ९॥

यद्यपि मैं अजन्मा अविनाशी अनादि ईश्वरहूं परन्तु त्रिगुणात्मक मायामें स्थित होकर अनेक अवतार धारण करताहूं ९

अधर्मोपचयो धर्मापचयो हि यदा भवेत् ॥
साधून्संरक्षितुं दुष्टांस्ताडितुं सम्भवाम्यहम् १०॥

जिस समय अधर्मकी वृद्धि और धर्मकी हानि होती है, उस समय साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके मारनेको मैं अवतार लेता हूं ॥ १० ॥

उच्छिद्याधर्मनिचयं धर्मं संस्थापयामि च ॥
हन्मि दुष्टांश्च दैत्यांश्च नानालीलाकरो मुदा ११

अधर्मके समूहको नष्टकर धर्मका स्थापन करताहूं और अनेक प्रकारकी लीलाकर आनंदसे दुष्ट दैत्योंका वध करताहूं॥११॥

वर्णाश्रमान्मुनीन्साधून्पालये बहुरूपधृक् ॥
एवं यो वेत्ति संभूतिर्मम दिव्या युगेयुगे ॥१२॥

अनेक रूप धारण कर वर्ण आश्रम और साधुओंको पालन करताहूं, इस प्रकारसे जो युगयुगमें मेरी दिव्य विभूतिको जानत है ॥ १२ ॥

तत्तत्कर्म च वीर्यं च मम रूपं समासतः ॥
त्यक्त्वाहंममताबुद्धिं न पुनर्भूः स जायते ॥१३॥

उन मेरे कर्म वीर्य और रूपका सेवन करता हुआ अहंकार और ममता बुद्धि त्याग न करै तो मुक्त होजाता है ॥ १३ ॥

निरीहा निर्भयारोषा मत्परा मद्व्यपाश्रयाः ॥
विज्ञानतपसा शुद्धा अनेके मामुपागताः ॥१४॥

इच्छारहित निर्भय क्रोधहीन मुझमेंही भाव और मेरीही उपासना करनेहारे विज्ञान और तपस्यासे शुद्ध होकर अनेक प्राणी मुझको प्राप्त होगये हैं ॥ १४ ॥

येन येन हि भावेन संसेवन्ते नरोत्तमाः ॥
तथातथा फलं तेभ्यःप्रयच्छाम्यव्ययःस्फुटम् १५

श्रेष्ठ जन मुझे जिस जिस भावसे सेवन करते हैं,मैं अविनश्वर प्रत्यक्ष उनको वैसा वैसाही फल देताहूं ॥ १५ ॥

जनाः स्युरितरे राजन्मम मार्गानुयायिनः ॥
तथैव व्यवहारं ते स्वेषु चान्येषु कुर्वते ॥ १६ ॥

हे राजन् ! जिस प्रकारसे दूसरे लोग भी मेरे अनुयायी होजाँय,इसी प्रकारका व्यवहार वे अपने तथा दूसरे मनुष्योंमें करते हैं ॥ १६ ॥

कुर्वन्ति देवताप्रीतिं कांक्षन्तः कर्मणां फलम् ॥
प्राप्नुवन्तीह ते लोके शीघ्रं सिद्धिं हि कर्मजाम् १७

और जो कर्मोंके फल प्राप्त होनेकी इच्छासे देवताओंकी उपासना करते हैं, उन उन कर्मोंके अनुसार उनको शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १७ ॥

चत्वारो हि मया वर्णा रजःसत्त्वतमोंऽशतः ॥
कर्मांशतश्च संसृष्टा मृत्युलोके मयाऽनघ ॥१८॥

हे पापरहित ! मृत्युलोकमें मैंने चारों वर्णोंको सत्त्व रज तम इन गुणोंसे और कर्मोंके अंशसे उत्पन्न किया है ॥१८ ॥

कर्त्तारमपि तेषां मामकर्त्तारं विदुर्बुधाः ॥
अनादिमीश्वरं नित्यमलिप्तं कर्मजैर्गुणैः ॥१९॥

यद्यपि मैं इनका कर्ता हूं परन्तु पंडित जन मुझे अकर्ता जानते हैं अनादि, ईश्वर, नित्य और कर्मोंके गुणोंसे अलिप्त मानते हैं ॥ १९ ॥

निरीहं योऽभिजानाति कर्म बध्नाति नैव तम् ॥
चक्रुः कर्माणि बुद्ध्वैवं पूर्वंपूर्वं मुमुक्षवः ॥२०॥

जो मुझे इच्छारहित जानता है उसको कर्मबंधन नहीं होता इस कारण पूर्वमें मुमुक्षु जन यह विचारकर कर्म करते थे २०

वासनासहितादाद्यात्संसारकारणाद्दृढात् ॥
अज्ञानबन्धनाज्जन्तुर्बुद्ध्वायं मुच्यतेऽखिलात् २१

वासनासे युक्त जो कि संसारका दृढ कारण है यही अज्ञानका बंधन है इसे जानकर प्राणी मुक्त होता है ॥ २१ ॥

तदकर्म च कर्मापि कथयाम्यधुना तव ॥
यत्र मौनं गता मोहादृषयो बुद्धिशालिनः ॥२२॥

क्या कर्म और क्या अकर्म है यह मैं तुमसे कहताहूं इसके जाननेमें ऋषिभी मोहको प्राप्त होजाते हैं ॥ २२ ॥

तत्त्वं मुमुक्षुणा ज्ञेयं कर्माकर्मविकर्मणाम् ॥
त्रिविधानीह कर्माणि मुनिम्नैषां गतिःप्रिय २३॥

कर्म अकर्म और विकर्म इसका तत्त्व मुक्तिकी इच्छा करनेवालोंको जानना अवश्य है, वेतीनही कर्म हैं हे प्रिय !

इनकी गति जाननी महाकठिन है, तू मेरा भक्त है इससे कहता हूं ॥ २३ ॥

क्रियायामक्रियाज्ञानमक्रियायां क्रियामतिः ॥
यस्यस्यात्सहिमर्त्येस्मिँल्लोकेमुक्तोऽखिलार्थकृत् ।

क्रियामें अक्रियाका ज्ञान, और अक्रियामें क्रियाकी मति जिसकी होती है वही इस लोकमें सब कर्मका करनेवाला हो तौभी मुक्त होजाता है * ॥ २४ ॥

कर्मांकुरवियोगेन यः कर्माण्यारभेन्नरः ॥
तत्त्वदर्शननिर्दग्धक्रियमाहुर्बुधा बुधम् ॥ २५ ॥

जो कर्मोंके अंकुरके वियोगसे अर्थात् संकल्प और कामना रहित कर्म करते हैं तत्त्वके जाननेसे उनकी सब क्रिया दग्ध हैं, ऐसा पंडितजन कहते हैं ॥ २५ ॥

---

* अर्थात् देह और इंद्रिय आदिके जितने उचित और निषिद्ध कर्म हैं उनमेंसे किसकोभी आत्मा नहीं करता है और सब बाह्य कर्म त्यागने परभी यदि देहादिको आत्मा मानाजाय तौभी अन्तः शारीरिक क्रिया होती है वहभी आत्माकी क्रिया समझी जाती है एवं उनसे आत्माको संसारका दुःख आवरण करलेता है, इस प्रकारका जिन्हें विश्वास है वही जनोंमें बुद्धिमान् हैं और सब कर्म करते रहनेपरभी योगी हैं॥

फलतृष्णां विहाय स्यात्सदा तृप्तो विसाधनः ॥
उद्युक्तोऽपि क्रियां कर्तुं किंचिन्नैव करोति सः२६

जो फलकी इच्छाको छोड कर सदा तृप्त रहते, और कोई साधन नहीं करते हैं, यदि वे कर्म करनेको उद्यत भी हैं तौभी कुछ नहीं करते हैं ॥ २६ ॥

निरीहो निगृहीतात्मा परित्यक्तपरिग्रहः ॥
केवलं वै गृहं कर्माचरन्नायाति पातकम् ॥ २७ ॥

जो इच्छा रहित आत्मजित सम्पूर्ण परित्याग किये हैं ऐसे प्राणी यदि घरमें रहकै कर्मभी करैं तौभी उन्हैं कुछ पातक नहीं लगता ॥ २७ ॥

अद्वन्द्वोऽमत्सरोभूत्वा सिद्ध्यसिद्ध्योः समश्च यः।
यथाप्राप्येहं संतुष्टः कुर्वन्कर्म न बद्ध्यते ॥२८॥

द्वंद्व और मत्सरहीन होकर सिद्धि असिद्धिमें समान दृष्टि रखते हैं जो प्राप्तिहो उसीमें संतुष्ट रहते हैं ऐसे प्राणी कर्म करनेसे भी लिप्त नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

अखिलैर्विषयैर्मुक्तो ज्ञानविज्ञानवानपि ॥
यज्ञार्थं तस्य सकलं कृतं कर्म विलीयते ॥२९॥

सम्पूर्ण विषयोंसे मुक्त ज्ञानवानभी यदि यज्ञके निमित्त कर्म करै तौ वह कर्म उसे बाधक नहीं होते, लीन हो जाते हैं ॥ २९ ॥

अहमग्निर्हविर्होता हुतं यन्मयि चार्पितम् ॥
ब्रह्मास्तव्यं च ते नाथ ब्रह्मण्येव यतो रतः ॥३०॥

अग्नि, होमका द्रव्य, हवन करनेहारे, और जो आहुति मुझे अर्पण की जाती है, वह सब ब्रह्मरूप है, इसे ब्रह्मस्वरूपसे देखकर जो हवन करता है,और ब्रह्मके ही अर्पण करता है वह ब्रह्मरूप कर्मकी समाधिसे ब्रह्महीको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

योगिनः केचिदपरे दिष्टं यज्ञं वदंति च ॥
ब्रह्माग्निरेव यज्ञो वै इति केचन मेनिरे ॥ ३१ ॥

कोई योगी देवयजनको यज्ञ कहते हैं, दूसरे ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञरूप उपायसे यज्ञ करनेको यज्ञ मानते हैं ॥ ३१ ॥

संयमाग्नौ परे भूप इंद्रियाण्युपजुह्वति ॥
स्वाग्निष्वन्ये तद्विषयांश्छन्दादीनुपजुह्वति॥३२॥

हे राजन् ! कोई योगी संयमरूप अग्निमें श्रोत्रादि इन्द्रियोंको हवन करते हैं, कोई इन्द्रियरूपी अग्निमें शब्दादिकोंकी आहुति देते हैं ॥ ३२ ॥

प्राणानामिंद्रियाणां च परे कर्माणि कृत्स्नशः ॥
निजात्मरतिरूपेऽग्नौ ज्ञानदीप्ते प्रजुह्वति ॥३३॥

और कोई ज्ञानमें जलती हुई आत्मसंयमरूपी योगाग्निमें सम्पूर्ण इंद्रिय कर्म और प्राणोंका हवन करते हैं, अर्थात् इनकी क्रिया आत्मामें लय करदेते हैं ॥ ३३ ॥

द्रव्येण तपसा वापि स्वाध्यायेनापि केचन ॥
तीव्रव्रतेन यतिनो ज्ञानेनापि यजंति माम्॥३४॥

कोई द्रव्ययज्ञका अनुष्ठानकर, दान, तपस्या, कोई स्वाध्यायसे, कोई महात्मा तीव्र व्रतसे, कोई ज्ञानसे मेरा यजन करते हैं ॥ ३४ ॥

प्राणेऽपानं तथा प्राणमपाने प्रक्षिपंति ये ॥
रुद्ध्वा गतीश्चोभयोस्ते प्राणायामपरायणाः३५॥

दूसरे कोई पूरकसे, प्राणवायुमें अपानको और रेचकसे प्राणको अपानमें हवन करते हैं, और कुंभकके अनुष्ठानसे प्राणापानकी गतिको रोककर प्राणायाम परायण होते हैं॥३५॥

जित्वा प्राणान्प्राणगतीरुपजुह्वति तेषु च ॥
एवं नानायज्ञरता यज्ञध्वंसितपातकाः ॥ ३६ ॥

दूसरे नियताहार होकर इन्द्रियोंकी वृत्तिको रोक पांचों प्राणोंमें पांचों प्राणोंकी आहुति देते हैं, इस प्रकार अनेक प्रकारके यज्ञकर यज्ञद्वारा पापोंका नाश करते हैं ॥ ३६ ॥

नित्यं ब्रह्म प्रयांत्येते यज्ञशिष्टामृताशिनः ॥
अयज्ञकारिणो लोको नायमन्यःकुतो भवेत् ३७

इस प्रकारसे जो नित्यही यज्ञसे बचे पदार्थको भोजन करते हैं वे नित्य ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, यज्ञ न करनेवालोंको दूसरा लोक तौ कहां यह भी नहीं है ॥ ३७ ॥

कायिकादि त्रिधाभूतान्यज्ञान्वेदे प्रतिष्ठितान् ॥
ज्ञात्वा तानखिलान्भूप मोक्ष्यसेऽखिलबंधनात्॥

हे राजन् ! ब्रह्मके सुखमें मन वचन कर्मके बहुत प्रकारके यज्ञ वर्णन किये हैं, उन्है क्रियासे उत्पन्न और क्रिया रहित आत्माले न होनेवासे जानो, ऐसा जानकर संसारसे मुक्त होगे ॥ ३८ ॥

सर्वेषां भूप यज्ञानां ज्ञानयज्ञः परो मतः ॥
अखिलं लीयते कर्म ज्ञाने मोक्षस्य साधने ३९॥

हे राजन् ! सब यज्ञोंमें ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, जिस मोक्षसाधन ज्ञानयज्ञमें सब कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

तज्ज्ञेयं पुरुषव्याघ्र प्रश्नेन नतितः सताम् ॥
शुश्रूषया वदिष्यंति संतस्तत्त्वविशारदाः ॥४०॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उस ज्ञानयज्ञको सत्पुरुषोंकी सेवा और प्रश्नसे प्राप्त करो तत्वजाननेवाले शुश्रूषासे उसको कहैंगे ॥ ४० ॥

नानासंगाञ्जनः कुर्वन्नैकं साधुसमागमम् ॥
करोति तेन संसारे बन्धनं समुपैति सः ॥४१॥

जो मनुष्य अनेक प्रकारकी संगति करताहै पर एक साधुकी संगति नहीं करता,वह संसारमें बंधनको प्राप्त होता है ॥४१॥

सत्संगाद्गुणसंभूतिरापदां लय एव च ॥
स्वहितं प्राप्यते सर्वैरिह लोके परत्र च ॥ ४२ ॥

सत्संगसे गुणकी प्राप्ति, और आपदाका नाश होताहै, इस लोक और परलोकमें अपना कल्याण प्राप्त होता है ॥४२॥

इतरत्सुलभं राजन्सत्संगोऽतीव दुर्लभः ॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्बन्धमेति ज्ञेयं ततस्ततः ॥४३॥

हे राजन् ! और तो सब सुलभ है, परन्तु सत्संग बडा दुर्लभ है, जिसके जाननेसे फिर संसारमें नहीं आता, इस कारण उसका जानना अवश्य है ॥ ४३ ॥

ततः सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ॥
अतिपापरतो जन्तुस्ततस्तस्मात्प्रमुच्यते ॥४४॥

सत्संगसे ज्ञान मिलनेसे यह सब प्राणियोंको! अपनेमेंही देखता है, इससे अतिपापी प्राणीभी मुक्त होजाता है ॥४४॥

द्विविधान्यपि कर्माणि ज्ञानाग्निर्दहति क्षणात् ॥
प्रसिद्धोऽग्निर्यथा सर्वं भस्मतां नयति क्षणात् ४५

जिस प्रकारसे प्रसिद्ध जलती अग्नि सब लकडियोंको क्षणमें भस्म कर देती है, इसी प्रकार ज्ञानआग्निमें पाप पुण्य दोनों प्रकारके कर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

न ज्ञानसमतामेति पवित्रमितरन्नृप ॥
आत्मन्येवावगच्छन्ति योगात्कालेनयोगिनः ४६

हे राजन् ज्ञानकी समान और कोई वस्तु पवित्र नहीं, योग सिद्ध महात्मा उस ज्ञानको काल उपस्थित होनेपर स्वयंही प्राप्त करता है ॥ ४६ ॥

भक्तिमानिन्द्रियजयी तत्परो ज्ञानमाप्नुयात् ॥
लब्ध्वा तत्परमं मोक्षं स्वल्पकालेन यात्यसौ ४७

भक्तिमान्, इन्द्रिय जीतनेमें तत्पर पुरुषही ज्ञानको प्राप्त कर सकता है, और ज्ञान प्राप्त होनेसे थोडे समयमेंही मुक्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

द.नं. ११०४

भक्तिहीनोऽश्रद्दधानः सर्वत्र संशयी तु यः ॥
तस्य शं नापि विज्ञानमिह लोकोऽथ वा परः ४८

और जो भक्तिहीन श्रद्धारहित सर्वत्र संदिग्धचित्त है, उसे कल्याणकी प्राप्ति नहीं तथा दोनों लोककी प्राप्ति नहीं, क्योंकि उसे ज्ञानही नहीं ॥ ४८ ॥

आत्मज्ञानरतं ज्ञाननाशिताखिलसंशयम् ॥
योगास्ताखिलकर्माणं बध्नन्ति भूप तानि न४९॥

जो आत्मज्ञानमें रत हैं, जिन्होंने ज्ञानसे सब संदेह दूर किये हैं, हे राजन् उस योगमें स्थित पुरुषोंको कर्म नहीं लगते कारण कि उन्होंने योगसे वे कर्म नष्ट करादिये हैं ॥ ४९ ॥

ज्ञानखड्गप्रहारेण संभूतामज्ञतां बलात् ॥
छित्त्वान्तःसंशयं तस्माद्योगयुक्तो भवेन्नरः ५०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ० श्रीगजाननवरेण्यसंवादे विज्ञानप्रतिपादनो नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस कारण ज्ञानरूप खड्गसे मनके अज्ञानसे उत्पन्न हुई संशयको बलसे काटकर मनुष्यको योगका आश्रय लेना उचित है ॥ ५० ॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ०श्रीगजाननवरेण्यसम्वादे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां विज्ञानमतिपादनोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

वरेण्य उवाच ।

संन्यस्तिश्चैव योगश्च कर्मणां वर्ण्यते त्वया ॥
उभयोर्निश्चितं त्वेकं श्रेयो यद्वद मे प्रभो ॥१॥

वरेण्य बोले हे भगवन् ! आप कर्मसंन्यास अर्थात् निष्काम भावसे कर्म करते करते विशुद्धचित्त होनेपर कर्मत्याग करनेको ज्ञानका कारण कहकर फिर कर्मयोगको ज्ञानका कारण कहतेहो, इससे मुझे सन्देह होता है इन दोनोंमें जो हित हो सो कहो ॥ १ ॥

श्रीगजानन उवाच ।

क्रियायोगो वियोगश्चाप्युभौ मोक्षस्य साधने ॥
तयोर्मध्ये क्रियायोगस्त्यागात्तस्य विशिष्यते २

श्रीगणेशजी बोले कि, अधिकारियोंके भेदसे कर्मयोग और कर्मसंन्यास दोनों मुक्तिके साधन हैं, उन दोनोंमें कर्मसंन्यासले कर्मयोग श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

द्वन्द्वदुःखसहोऽद्वेष्टा यो न कांक्षति किञ्चन ॥
मुच्यते बंधनात्सद्यो नित्यं संन्यासवान्सुखम् ३

जो द्वंद्व और दुःखभी सहकर किसीसे द्वेष नहीं करते; और किसी बातकी इच्छा नहीं करते, ऐसे प्राणी अनायाससे तत्काल कर्म बन्धनसे मुक्त होते हैं ॥ ३ ॥

वदंति भिन्नफलकौ कर्मणस्त्यागसंग्रहौ ॥
मूढाऽल्पज्ञास्तयोरेकं संयुञ्जीत विचक्षणः ॥ ४ ॥

कर्मसंन्यास और कर्मयोगको अज्ञानीही पृथक् २ कहते हैं परन्तु पंडितगण उन्हें एकही कहते हैं ॥ ४ ॥

यदेव प्राप्यते त्यागात्तदेव योगतः फलम् ॥
संग्रहं कर्मणो योगं यो विंदति स विंदति ॥५॥

जो फल कर्मसंन्याससे मिलता है, वही फल कर्मयोगसे प्राप्त होता है, कर्मसंन्यास और कर्मयोगको जो यथार्थ जानता है वही ज्ञाता है ॥ ५ ॥

केवलं कर्मणां न्यासं संन्यासं न विदुर्बुधाः ॥
कुर्वन्ननिच्छया कर्म योगी ब्रह्मैव जायते ॥ ६ ॥

पंडितजन केवल कर्मसंन्यासकोही संन्यास नहीं कहते यदि योगी अनिच्छासे कर्म करे तो वह ब्रह्मही हो जाता है ॥ ६ ॥

निर्मलो यतचित्तात्मा जितगो योगतत्परः ॥
आत्मानं सर्वभूतस्थं पश्यन्कुर्वन्न लिप्यते ॥ ७ ॥

शुद्धचित्त, आत्माके वश करनेहारे जितेन्द्री योगमें तत्पर सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित आत्माको देखनेहारे, कर्म करते हुए भी लिप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

तत्त्वविद्योगयुक्तात्मा करोमीति न मन्यते ॥
एकादशानींद्रियाणि कुर्वंति कर्म संख्यया ॥ ८ ॥

तत्त्वका जाननेहारा योगयुक्त आत्मा पुरुष मैं करता हूं ऐसा ही नहीं मान्ता, परन्तु मनसहित एकादश इन्द्रिय कर्म करती हैं ऐसा मानते हैं ॥ ८ ॥

तत्सर्वमर्पयेद्ब्रह्मण्यपि कर्म करोति यः ॥
न लिप्यते पुण्यपापैर्भानुर्जलगतो यथा ॥ ९ ॥

और जो कर्म करनेहारा सब कर्म ब्रह्ममें अर्पणकर देता है,

वह इस प्रकार पापपुण्यसे लिप्त नहीं होता जैसा सूर्यका बिम्ब जलमें पडता है और वह उस्से लिप्त नहीं होता ॥ ९ ॥

कायिकं वाचिकं बौद्धमैन्द्रियं मानसं तथा ॥
त्यक्त्वाशां कर्म कुर्वन्ति योगज्ञाश्चित्तशुद्धये १०॥

योगके जाननेवाले चित्तशुद्धिके निमित्त मन वचन बुद्धि इन्द्रिय मनसे अनुराग त्यागकर कर्म करते हैं ॥ १० ॥

योगहीनो नरः कर्म फलेहया करोत्यलम् ॥
बध्यते कर्मबीजैः स ततो दुःखं समश्नुते॥११॥

योगहीन मनुष्य कर्मोंको फलकी इच्छासे करता है,वह कर्म बीजसे बंधता है, और इसीसे दुःखको प्राप्त होता है ॥११॥

मनसा सकलं कर्म त्यक्त्वा योगी सुखं वसेत् ॥
न कुर्वन्कारयन्वापि नन्दन्श्वभ्रे सुपत्तने ॥१२॥

योगीको उचित है मनसे सम्पूर्ण कर्मोंको त्यागकर,सुखसे रहे, व उत्तम नगरमें वास करता हुआ भी न कुछ करे न करावे ॥ १२ ॥

न क्रिया न च कर्तृत्वं कस्यचित्सृज्यते मया ॥
न क्रियाबीजसंपर्कःशक्त्यातात्क्रियतेऽखिलम् १३

और ऐसा जाननेमें न कोई क्रिया करता हूं, न कोई कर्तृत्व-
पना मुझमें है, न मेरा क्रियाके वीजसे कुछ संबंध है, यह सब
कुछ शक्ति अर्थात् प्रकृतिसे स्वयं होता रहता है ॥ १३ ॥

कस्यचित्पुण्यपापानि न स्पृशामि विभुर्नृप ॥
ज्ञानमूढा विमुह्यन्ते मोहेनावृतबुद्धयः ॥ १४ ॥

मैं विभु आत्मा किसीके पुण्य और पापोंको स्पर्श नहीं
करताहूं, हे राजन् ! मोहसे मलीन बुद्धिवाले ज्ञानके न होनेसे
मूर्खही मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

विवेकेनात्मनोऽज्ञानं येषां नाशितमात्मना ॥
तेषां विकाशमायाति ज्ञानमादित्यवत्परम् १५॥

जिन्होंने ज्ञानद्वारा आत्मासेही अपना अज्ञान नाश किया
है उनका ज्ञान सूर्यकी समान परम प्रकाशित होता है ॥१५॥

मन्निष्ठा मद्धियोऽत्यन्तं मच्चित्ता मयि तत्पराः ॥
अपुनर्भवमायान्ति विज्ञानान्नाशितैनसः ॥ १६ ॥

जिनकी निष्ठा और बुद्धि मुझहीमें है, जिनका चित्त मुझमें
अत्यन्त आसक्त है, जो सदा मेरे परायण हैं वह विज्ञानद्वारा
पापनाश करके मुक्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

ज्ञानविज्ञानसंयुक्ते द्विजे गवि गजादिषु ॥
समेक्षणा महात्मानः पण्डिताः श्वपचे शुनि १७॥

ज्ञानविज्ञानयुक्त महात्मा पंडितजन ब्राह्मण, गौ, हस्ती आदि प्राणी, चांडाल, श्वान इन सबमें समान दृष्टि रखते हैं ॥१७॥

वश्यः स्वर्गो जगत्तेषां जीवन्मुक्ताः समेक्षणाः ॥
यतोऽदोषं ब्रह्म समं तस्मात्तैर्विषयीकृतम् ॥१८॥

जिनका मन समतामें स्थित है, इस लोकमें जीते ही वे संसार और स्वर्गको जीत चुके हैं कारण कि ब्रह्म निर्दोष और समान है, इसकारण वे ब्रह्ममें स्थित हैं ॥ १८ ॥

प्रियाप्रिये प्राप्य हर्षद्वेषौ ये प्राप्नुवन्ति न ॥
ब्रह्माश्रिता असंमूढा ब्रह्मज्ञाः समबुद्धयः ॥१९॥

जो महात्मा प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें हर्षशोक नहीं करते, वे ज्ञानयुक्त ब्रह्ममें स्थित ब्रह्मके जाननेवालेके समान बुद्धिमान् हैं ॥ १९ ॥

वरेण्य उवाच।

किं सुखं त्रिषु लोकेषु देवगन्धर्वयोनिषु ॥
भगवन्कृपया तन्मे वद विद्याविशारद ॥ २० ॥

वरेण्य बोले भगवन् ! तीन लोक तथा देवता और गन्धर्व योनिमें यथार्थ सुख क्या है, हे विद्याविशारद ! कृपाकर आप यह मुझसे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥

श्रीगजानन उवाच ।

आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि॥
अविनाशि सुखं तद्धि न सुखं विषयादिषु॥२१॥

श्रीगणेशजी बोले—जो अपनी आत्मामें ही रमण करते और कहीं आसक्त नहीं हैं, वह आनन्द भोगते हैं उसीका नाम अविनाशी सुख है, विषयादिकोंमें सुख नहीं है ॥ २१ ॥

विषयोत्थानि सौख्यानि दुःखानां तानि हेतवः॥
उत्पत्तिनाशयुक्तानि तत्रासक्तो न तत्त्ववित् २२

विषयोंसे उत्पन्न हुए सुख दुःखके ही कारण हैं,और उत्पत्ति तथा नाशवाले हैं, तत्त्ववित् उनमें आसक्त नहीं होते ॥ २२॥

कारणे सति कामस्य क्रोधस्य सहते च यः ॥
तौ जेतुं वर्ष्मविरहात्स सुखं चिरमश्नुते ॥२३॥

जो इस शरीरके रहते ही काम क्रोध आदिसे उपजनेवाले वेगको रोग सकता है वही योगी है और बहुत कालतक सुख भोगता है ॥ २३ ॥

अन्तर्निष्ठोऽन्तःप्रकाशोऽन्तःसुखोऽन्तारतिर्लभेत्
असंदिग्धोऽक्षयं ब्रह्म सर्वभूतहितार्थकृत् ॥२४॥

जिनके हृदयमें भक्ति है ज्ञानसे जिनके सब संदेह मिटकर प्रकाश होगया है, जिसे कोई संदेह नहीं, जो सब प्राणियोंका हित करता है, वही अक्षय ब्रह्मको प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

जेतारःषड्रिपूणां ये शमिनो दमिनस्तथा ॥
तेषां समंततो ब्रह्म स्वात्मज्ञानां विभात्यहो२५॥

जो कामक्रोधादि छहों शत्रुओंको जीत चुके हैं, जो शम और जितेन्द्रियपनमें सावधान हैं, उन आत्मज्ञानियोंको समता बुद्धिके कारण ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥

आसनेषु समासीनस्त्यक्त्वेमान्विषयान्बहिः ॥
संस्तभ्य भ्रुकुटीमास्ते प्राणायामपरायणः ॥२६

इन सब बाह्य विषयोंको त्यागकर एकान्तमें आसनमें स्थितहो, दृष्टिको भोहके मध्यमें स्थापनकर प्राणायाम करै२६॥

प्राणायामं तु संरोधं प्राणापानसमुद्भवम् ॥
वदन्ति मुनयस्तं च त्रिधाभूतं विपश्चितः॥२७॥

प्राण और अपान वायुके रोकनेको प्राणायाम कहते हैं,

ऋषियोंने जो कि बडे चतुर और मुनि हैं, उसके तीन भेद कहे हैं ॥ २७ ॥

प्रमाणं भेदतो विद्धि लघुमध्यमसुत्तमम् ॥
दशभिर्द्व्यधिकैर्वर्णैः प्राणायामो लघुः स्मृतः२८

प्रमाणके भेदसे प्राणायाम लघु, मध्यम और उत्तम ऐसे तीनप्रकारका है, बारह अक्षरका प्राणायाम लघु कहाता है२८

चतुर्विंशत्यक्षरो यो मध्यमः स उदाहृतः ॥
षट्त्रिंशल्लघुवर्णो य उत्तमः सोऽभिधीयते॥२९॥

चौवीस अक्षरका मध्यम और ३६ छत्तीस अक्षरोंका उत्तम है ॥ २९ ॥

सिंहं शार्दूलकं वापि मत्तेभं मृदुतां यथा ॥
नयन्ति प्राणिनस्तद्वत्प्राणापानौ सुसाधयेत्३०

सिंह व्याघ्र अथवा मतवाले हाथीको जैसे मनुष्य नम्र करके अपने आधीन करता है, इसी प्रकार प्राण और अपान वायुको साधै ॥ ३० ॥

पीडयन्ति मृगांस्तेन लोकान्वश्यंगतान्नृप ॥
दहत्येनस्तथा वायुः संस्तब्धो न च तत्तनुम्३१

हे राजन् ! जिस प्रकार अपने वशमें करे सिंहादि मृगोंको तथा लोकोंको पीडा नहीं देते हैं, इसी प्रकार यह वायु प्राणायामसे स्थित होकर पापोंको भस्म करता है, परन्तु शरीरको नहीं जलाता ॥ ३१ ॥

यथायथा नरः कश्चित्सोपानावलिमाक्रमेत् ॥
तथातथा वशीकुर्यात्प्राणापानौ हि योगवित् ३२

जिस प्रकार क्रमसे मनुष्य चढनेकी सीढियोंको अतिक्रमण करता है, इसी प्रकार क्रमसे प्राणापानको वशमें करना उचित है ॥ ३२ ॥

पूरकं कुम्भकं चैव रेचकं च ततोऽभ्यसेत् ॥
अतीतानागतज्ञानी ततः स्याज्जगतीतले ॥३३॥

पूरक[1] कुंभक और रेचकका अभ्यास करके यह प्राणी इस जगतमें भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालका ज्ञाता हो जाताहै ३३

प्राणायामैर्द्वादशभिरुत्तमैर्धारणा मता ॥
योगस्तु धारणे द्वे स्याद्योगीशस्ते सदाभ्यसेत् ३४

---

१ पूरक-वायुको ऊपर खेंचना, कुंभक-वायुका रोध करना। रेचक-वायुका त्याग करना यह तीन नाड़ी हैं।

बारह प्राणायामसे उत्तम धारणा होती है दो धारणासे योग सिद्ध होता है, योगी निरंतर धारणाका अभ्यास करै ॥ ३४ ॥

एवं यः कुरुते राजंस्त्रिकालज्ञः स जायते ॥
अनायासेन तस्य स्याद्वश्यं लोकत्रयं नृप ॥३५॥

हे राजन् ! जो इस प्रकार साधना करते हैं, उन्हें त्रिकाल-का ज्ञान हो जाता है, और अनायास उनके वशमें त्रिलोकी हो जाती है ॥ ३५ ॥

ब्रह्मरूपं जगत्सर्वं पश्यति स्वान्तरात्मनि ॥
एवं योगश्च संन्यासः समानफलदायिनौ ॥३६॥

अपने अन्तरात्मामें सब जगतको ब्रह्मरूप देखता है उसे इस प्रकारसे कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों समान फलके देनेहारे हैं ॥ ३६ ॥

जन्तूनां हितकर्तारं कर्मणां फलदायिनम् ॥
मांज्ञात्वामुक्तिमाप्नोतित्रैलोक्यस्येश्वरंविभुम् ३७

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषत्सु योगामृतार्थ-शास्त्रे गणेशपुराणे उ० गजाननवरेण्यसम्वादे वैध-संन्यासयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सब प्राणियोंका हितकारी कर्मका फल देनेहारा त्रिलोकीका ईश्वर व्यापक मैं हूं मुझे जान्नेसे ही प्राणी मुक्त होजाते हैं३७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिष० योगामृतार्थशास्त्रे गणेशपुराणे उ० गजाननवरेण्यसंवादे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां वैधसंयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

श्रीगजानन उवाच।

श्रौतस्मार्तानि कर्माणि फलं नेच्छन्समाचरेत्॥
शस्तः स योगी राजेन्द्र अक्रियाद्योगमाश्रितात्१

श्रीगणेशजी बोले हे राजन्! जो श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए कर्मोंको फलकी इच्छा न करके आरम्भ करता है, वह योगी कर्मसंन्यासियोंमें श्रेष्ठ है॥ १॥

योगप्राप्त्यै महाबाहो हेतुः कर्मैव मे मतम्॥
सिद्धियोगस्य संसिद्ध्यै हेतू शमदमौ मतौ॥२॥

हे महाभुज! मेरे मतमें योगप्राप्तिके निमित्त कर्म ही श्रेष्ठ है, योगसिद्धिकी सिद्धिके निमित्त शमदमही कारण हैं॥२॥

इंद्रियार्थांश्च संकल्प्य कुर्वन्स्वस्य रिपुर्भवेत्॥
एताननिच्छन्यः कुर्वन्सिद्धिं योगी च सिद्ध्यति३

इन्द्रियोंके निमित्त संकल्प कर कर्म करनेवाला अपना शत्रु होता है, और जो इनकी इच्छा न कर कर्म करता है वही योगी सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

सुहृत्त्वे च रिपुत्वे च उद्धारे चैव बंधने ॥
आत्मनैवात्मनो ह्यात्मा नात्मा भवति कश्चन ४

एकमात्र आत्माही आत्माका मित्र और शत्रु है, यही ज्ञान होनेसे उद्धार करता है, और यही अज्ञान होनेसे बन्धनमें डालता है, दूसरा कोई नहीं ॥ ४ ॥

मानेऽपमाने दुःखे च सुखे सुहृदि साधुषु ॥
मित्रेऽमित्रेऽप्युदासीने द्वेष्ये लोष्टे च काञ्चने ।५॥

मान, अपमान, सुख, दुःख, साधु, आप्त, मित्र, अमित्र, उदासीन, द्वेषी; मट्टीका ढेला और सुवर्ण इत्यादिमें ॥ ५ ॥

समो जितात्मा विज्ञानी ज्ञानींद्रियजयावहः ॥
अभ्यसेत्सततं योगं यदा युक्ततमो हि सः ॥६॥

समान बुद्धि रखनेवाला, जितेन्द्रिय, विज्ञानी, जितात्मा, सदा योगका अभ्यास करता रहै. जब तक उसको योगकी प्राप्ति हो ॥ ६ ॥

ततः श्रान्तो व्याकुलो वा क्षुधितो व्यग्रचित्तकः।
कालेऽतिशीतेऽत्युष्णे वानिलाग्न्यम्बुसमाकुले ७

तप्त हो, श्रान्त हो, व्याकुल, क्षुधित, व्यग्रचित्त, अति-शीतकाल वा अति उष्णकाल,अग्नि वायु और जलकी अधि-काईवाला देश ॥ ७ ॥

सध्वनावतिजीर्णे गोः स्थाने साग्नौ जलान्तिके॥
कूपकूले श्मशाने च नद्यां भित्तौ च मर्मरे ॥८॥

जिस स्थानमें ध्वनि, वा कलकलशब्द अधिक हो, गोठ, अग्निके निकट, जलके निकट, कूपके निकट, श्मशान, नदी, भीतिके निकट तथा जहां शुष्क पर्णका शब्द सुन पडता है, अतिजीर्ण स्थान ॥ ८ ॥

चैत्ये सवल्मिके देशे पिशाचादिसमावृते ॥
नाभ्यसेद्योगविद्योगं योगध्यानपरायणः॥ ९ ॥

चैत्य(बडी बाडियोंमें)वल्मीक(बांवई) तथा पिशाचादि-युक्त स्थानमें योगाभ्यास करनेवाला योगी योगाभ्यास न करै ॥ ९ ॥

स्मृतिलोपश्च मूकत्वं बाधिर्यं मन्दता ज्वरः ॥
जडता जायते सद्यो दोषाज्ञानाद्धि योगिनः१०

स्मृतिका लोप होना, गूंगापन, बधिरता, मन्दता, ज्वर, जडता यह सब कुछ दोष अज्ञानसे योगीको होते हैं ॥ १० ॥

एते दोषाः परित्याज्या योगाभ्यसनशालिना ॥
अनादरे हि चैतेषां स्मृतिलोपादयो ध्रुवम् ॥ ११ ॥

योगाभ्यासीको यह सब दोष त्याग करने चाहिये, इनमें जो आलस्य करे तो अवश्य स्मृतिलोपादि दोष होते हैं, इससे उपरोक्त स्थानोंमें योगसाधन न करै ॥ ११ ॥

नातिभुञ्जन्सदा योगी नाभुञ्जन्नातिनिद्रितः ॥
नातिजाग्रत्सिद्धिमेति भूप योगं सदाभ्यसन् १२

योगी सदा थोडा भोजन करै, विना भोजन किये भी न रहै, न बहुत सोवै, न बहुत जागै, इस प्रकार सदा योगाभ्यास करनेसे सिद्धिको प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥

संकल्पजांस्त्यजेत्कामान्नियताहारजागरः ॥
नियम्य खगणं बुद्ध्या विरमेत शनैः शनैः १३ ॥

सम्पूर्ण इच्छा और कामनाओंको त्याग करे, थोडा भोजन करै, जागरणशील हो, बुद्धिसे सब इंद्रियोंको वशकर शनैः शनैः विरामको प्राप्त हो ॥ १३ ॥

ततस्ततः कृषेदेतद्यत्र यत्रानुगच्छति ॥
धृत्यात्मवशगं कुर्याञ्चित्तं चञ्चलमादृतः ॥१४॥

जिस जिस स्थानमें मन जाय उस उस स्थानसे उसे खींचे और धैर्यतासे उसे अपने वश करै, कारण कि वह महा-चंचल है॥ १४ ॥

एवं कुर्वन्सदा योगी परां निर्वृतिमृच्छति ॥
विश्वस्मिन्निजमात्मानंविश्वंचस्वात्मनीक्षते १५

योगी सदा इसप्रकार करनेसे परम शांतिको प्राप्त होता है, जो संसारको अपनी आत्मामें और आत्माको संसारमें देखते हैं॥ १५॥

योगेन यो मामुपैति तमुपैम्यहमादरात् ॥
मोचयामि न मुञ्चामि तमहं मां स न त्यजेत् १६

योगसे जो मुझको प्राप्त होता है, उसको मैं आदरसे प्राप्त होता हूं, और जो मुझको नहीं छोडता है उसको मैं नहीं छोडताहूं, संसारसे मुक्त कर देता हूं॥ १६॥

सुखे सुखेतरे द्वेषे क्षुधि तोषे समस्तृषि ॥
आत्मसाम्येन भूतानि सर्वगं मां च वेत्ति यः१७॥

सुख,दुःख,द्वेष, क्षुधा, शांति,तृषा इनमें जो आत्माके समान सब प्राणियोंको देखता है, और जो मुझे जानता है ॥ १७ ॥

जीवन्मुक्तः स योगीन्द्रः केवलं मयि संगतः ॥
ब्रह्मादीनां च देवानां स वंद्यः स्याज्जगत्त्रये॥१८॥

ऐसे योगी जो केवल मुझमें संगति करनेवाले हैं, वे जीवन्मुक्त हैं, वह त्रिलोकीमें ब्रह्मादिक देवताओंसे नमस्कार करने योग्य हैं ॥ १८ ॥

वरेण्य उवाच ।

द्विविधोऽपि हि योगोऽयमसंभाव्यो हि मे मतः॥
यतोऽन्तःकरणं दुष्टं चञ्चलं दुर्ग्रहं विभो ॥१९ ॥

वरेण्यने कहा भगवन् ! यह दोनों प्रकारकी योगसिद्धि मैं महाकठिन देखता हूं कारण कि मन बडा दुष्ट और चंचल है इसका निग्रह करना कठिन है ॥ १९ ॥

श्रीगजानन उवाच ।

यो निग्रहं दुर्ग्रहस्य मनसः संप्रकल्पयेत् ॥
घटीयन्त्रसमादस्मान्मुक्तःसंसृतिचक्रकात् २०॥

श्रीगणेशजी बोले हे राजन् ! जो निग्रह करनेमें कठिन,इस

मनका निग्रह करता है, वह घटीयंत्रके समान घूमनेवाले इस संसार चक्रसे मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥

विषयैः क्रकचैरेतत्संसृष्टं चक्रकं दृढम् ॥
जनश्छेत्तुं न शक्नोति कर्मकीलैः सुसंवृतम् ॥२१॥

विषयरूपी आरोंसे यह दृढ चक्र बना हुआ है और कर्मरूपी कीलोंसे जडा हुआ है इसकारण साधारण मनुष्य इसके छेदन करनेको समर्थ नहीं होते ॥ २१ ॥

अतिदुःखं च वैराग्यं भोगाद्वैतृष्ण्यमेव च ॥
गुरुप्रसादः सत्संग उपायास्तज्जये अमी ॥२२॥

अतिशय दुःख वैराग्य, भोग तृष्णाका त्याग, गुरुकी प्रसन्नता, सत्संग, यह इसके जीतनेके उपाय हैं ॥ २२ ॥

अभ्यासाद्वा वशीकुर्यान्मनो योगस्य सिद्धये ॥
वरेण्य दुर्लभो योगो विनास्य मनसो जयात् २३

योगसिद्धिके निमित्त अभ्याससे मनको अपने वशमें करै, हे वरेण्य ! विना मनके जीते योग महाकठिन है ॥ २३ ॥

वरेण्य उवाच ।

योगभ्रष्टस्य को लोकः का गतिः किं फलं भवेत् ॥
विभो सर्वज्ञ मे छिंधि संशयं बुद्धिचक्रभृत् २४॥

वरेण्य बोले भगवन् ! योगभ्रष्टको किस लोककी प्राप्ति और उसकी क्या गति होती है, क्या फल होता है हे सर्वज्ञ ! हे बुद्धिरूपी चक्रके धारण करनेवाले ! यह मेरा संदेह छेदन कीजिये ॥ २४ ॥

श्रीगजानन उवाच ।

दिव्यदेहधरो योगाद्भ्रष्टः स्वर्भोगमुत्तमम् ॥
भुक्त्वा योगिकुलेजन्म लभेच्छुद्धिमतां कुले२५

श्रीगणेशजी बोले हे राजा ! योगभ्रष्ट पुरुष भी दिव्य देह धारणकर स्वर्गमें जाते हैं, वहां कर्मोंके फल उत्तम सुख भोग कर शुद्धता युक्त योगियोंके कुलमें जन्म लेते हैं ॥ २५ ॥

पुनर्योगी भवत्येष संस्कारात्पूर्वकर्मजात् ॥
नहि पुण्यकृतां कश्चिन्नरकं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥

और फिर भी यह पूर्व जन्मोंके संस्कारसे योगी होता है कोई भी पुण्यकर्म करनेवाला नरकको नहीं जाता ॥ २६ ॥

ज्ञाननिष्ठात्तपोनिष्ठात्कर्मनिष्ठान्नराधिप ॥
श्रेष्ठो योगी श्रेष्ठतमो भक्तिमान्मयि तेषु यः २७

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ० श्रीगजाननवरेण्यसंवादे योगावृत्तिप्रशंसनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! ज्ञाननिष्ठासे तपकी निष्ठावालोंसे कर्मनिष्ठासे जो योगसे मुझमें भक्ति करता है वह श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ० श्रीगजाननवरेण्यसंवादे पंडित-ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां योगावृत्ति-प्रशंसनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीगजानन उवाच ॥

ईदृशं विद्धि मे तत्त्वं मद्गतेनान्तरात्मना ॥
यज्ज्ञात्वा मामसंदिग्धं वेत्सि मोक्ष्यसि सर्वगम् १

श्रीगणेशजी बोले हे राजन् ! इस प्रकार मुझमें मन लगाकर मेरा तत्त्व जानो जिसके जाननेसे मुझे सर्वगत और यथार्थ जानकर मुक्त हो जाओगे ॥ १ ॥

तत्तेऽहं शृणु वक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ॥
अस्ति ज्ञेयं यतो नान्यन्मुक्तेश्च साधनं नृप॥२॥

हे राजन् ! लोकोंके ऊपर अनुग्रहकी इच्छासे वह तत्त्व मैं तुमसे वर्णन करता हूं जिसके जान्नेसे दूसरे मुक्तिके साधन जाननेकी आवश्यकता नहीं रहती ॥ २ ॥

ज्ञेया मत्प्रकृतिः पूर्वं ततः स्याज्ज्ञानगोचरः ॥
ततो विज्ञानसंपत्तिर्मयि ज्ञाते नृणां भवेत् ॥३॥

प्रथम तौ मेरी प्रकृति जाननी उचित है, उससे ज्ञान होता है, इसके उपरान्त मेरा ज्ञान होनेसे प्राणियोंको विज्ञान सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

क्ष्मानलौ खमहंकारः कं चित्तं धीसमीरणौ ॥
रवीन्दू यागकृच्चैकादशधा प्रकृतिर्मम ॥ ४ ॥

पृथ्वी, अग्नि, आकाश, अहंकार, होमद्रव्य, चित्त, बुद्धि, वायु, रवि, चंद्र, यागकर्ता, यह ग्यारह प्रकारकी मेरी प्रकृति है४

अन्यां मत्प्रकृतिं वृद्धा मुनयः संगिरन्ति च ॥
तथा त्रिविष्टपं व्याप्तं जीवत्वं गतयानया ॥ ५ ॥

औरभी वृद्ध मुनिजन ऐसा वर्णन करते हैं, कि आनेजानेवाली जीवत्वको प्राप्त हुई त्रिलोकीमें व्याप्त यह भी मेरी प्रकृति है५॥

आभ्यामुत्पाद्यते सर्वं चराचरमयं जगत् ॥
संगाद्विश्वस्य संभूतिः परित्राणं लयोऽप्यहम् ६॥

प्रकृतिपुरुषसेही चराचर जगत् उत्पन्न होताहै इसीके संगसे मुझसे इस जगत्की उत्पत्ति पालन और नाश होता है ॥६॥

तत्त्वमेतन्निबोद्धुं मे यतते कश्चिदेव हि ॥
वर्णाश्रमवतां पुंसां पुरा चीर्णेन कर्मणा ॥ ७ ॥

इस मेरे तत्त्व जाननेके निमित्त वर्णाश्रमी पुरुषोंमें पूर्वज-न्मके कर्मानुसार कोई सहस्रोंमें एक यत्न करता है ॥ ७ ॥

साक्षात्करोति मां कश्चिद्यत्नवत्स्वपि तेषु च ॥
मत्तोऽन्यन्नेक्षते किंचिन्मयि सर्वं च वीक्षते ॥८॥

उन सहस्रों यत्नवानोंमें कोई एक मुझको साक्षात् करता है मुझसे अन्य और किसीको नहीं देखता, और मुझमें सम्पूर्ण जगत्को देखता है ॥ ८ ॥

क्षितौ सुगन्धरूपेण तेजोरूपेण चाग्निषु ॥
प्रभारूपेण पूष्णयब्जे रसरूपेण चाप्सु च ॥९॥

पृथ्वीमें सुगन्धिरूपसे, अग्निमें तेजरूपसे, सूर्यमें और चन्द्रमें प्रभारूपसे, जलमें रसरूपसे मैं स्थित हूं ॥ ९ ॥

धीतपोबलिनां चाहं धीस्तपो बलमेव च ॥
त्रिविधेषु विकारेषु मदुत्पन्नेष्वहं स्थितः ॥१०॥

बुद्धिमान् तपस्वी बलिष्ठोंमें मैं बुद्धि, तप और बलरूपसे स्थित हूं, तीनप्रकारके विकार मुझहीसे उत्पन्न हुए हैं और उन सबमें मैं स्थित हूं ॥ १० ॥

न मां विन्दति पापीयान्मायामोहितचेतनः ॥
त्रिविकारा मोहयति प्रकृतिर्मे जगत्त्रयम् ११॥

मायासे मोहित चित्तवाले पापी मुझे नहीं जानते, तीन-प्रकारके विकार सत् रज तमवाली मेरी प्रकति त्रिलोकीको मोहित करती है ॥ ११ ॥

यो मे तत्त्वं विजानाति मोहं त्यजति सोऽखिलम्।
अनेकैर्जन्मभिश्चैवं ज्ञात्वा मां मुच्यते ततः १२

जो मेरे तत्त्वकों जानता है, वह सम्पूर्ण मोहको त्याग करता है, अनेक जन्मोंमें मुझे जानकर प्राणी मुक्त होजाताहै॥१२॥

अन्येनानाविधान्देवान्भजन्ते तान्व्रजन्ति ते ॥
यथायथा मतिं कृत्वा भजते मां जनोऽखिलः १३

जो अनेक प्रकारके देवतोंको भजन करते हैं, वे उन्हीको प्राप्त होते हैं, सम्पूर्ण मनुष्य जैसी जैसी माति करके मेरा भजन करते हैं ॥ १३ ॥

तथातथास्य तं भावं पूरयाम्यहमेव तम् ॥
अहं सर्वं विजानामि मां न कश्चिद्विबुद्ध्यते १४

उसी प्रकारसे मैं उनके भाव पूर्ण करताहूं, मैं सबको जानताहूं और मुझे कोई नहीं जानता ॥ १४ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं न विदुः काममोहिताः ॥
नाहं प्रकाशतां यामि अज्ञानां पापकर्मणाम् १५

मुझ अव्यक्त गुप्त स्वरूपको कामसे मोहित दृष्टिवाले कोई नहीं जानते हैं, अज्ञानी और पापी पुरुषोंको मैं प्रगट नहीं होता हूं ॥ १९ ॥

यः स्मृत्वा त्यजति प्राणमन्ते मां श्रद्धयान्वितः॥
स यात्यपुनरावृत्तिं प्रसादान्मम भूभुज ॥ १६ ॥

जो अन्तसमय श्रद्धायुक्त होकर मुझे स्मरणकर अपना शरीर त्याग करता है, हे राजन् ! वह मेरी कृपासे मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥

यंयं देवं स्मरन्भक्त्या त्यजति स्वं कलेवरम् ॥
तत्तत्सालोक्यमायाति तत्तद्भक्त्या नराधिप १७

भक्तिपूर्वक जिस जिस देवताको यह प्राणी स्मरण करता हुआ कलेवरको त्याग करता है, हे राजन् ! उनकी भक्ति करनेसे उन्हीके लोकको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

अतश्चाहर्निशं भूप स्मर्तव्योऽनेकरूपवान् ॥
सर्वेषामप्यहं गम्यः स्रोतसामर्णवो यथा ॥१८॥

इस कारण हे राजन् ! रातदिन मेरे अनेक रूप स्मरण करने योग्य हैं, सबको मैं ही प्राप्त होता हूं; जैसे नदियोंका

जल सागरमें जाता है, ऐसे ही सब देवताओंकी आराधना मुझमें प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राद्याँल्लोकान्प्राप्य पुनः पतेत् ॥
यो मामुपैत्य संदिग्धः पतनं तस्य न क्वचित् १९

ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्रादि लोकोंको प्राप्त होकर यह फिर फिर संसारमें प्राप्त होता है, जो असंदिग्ध होकर मुझको प्राप्त होता है उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ १९ ॥

अनन्यशरणो यो मां भक्त्या भजति भूमिप ॥
योगक्षेमौ च तस्याहं सर्वदा प्रतिपादये ॥२०॥

हे राजन् ! जो अनन्य शरण होकर भक्तिसे मेरा भजन करता है, मैं सदा उसके योग क्षेम (मंगल) का विधान करता हूं ॥ २० ॥

विविधा गतिरुद्दिष्टा शुक्ला कृष्णा नृणां नृप ॥
एकया परमं ब्रह्म परया याति संसृतिम् ॥२१॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीमन्महागणेशपु० उत्तरखण्डे श्रीगजानन-
वरेण्यसंवादे बुद्धियोगो नाम
षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! मनुष्योंकी कृष्ण और शुक्लपक्षके भेदसे अनेक गति हैं एकसे प्राणी संसारमें आता है, और दूसरीसे परब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

ॐ तत्स० श्रीमद्ग० योगा० श्रीगणेश० पण्डितज्वालाप्रसाद-मिश्रकृतभाषाटीकायां बुद्धियोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वरेण्य उवाच।

का शुक्ला गतिरुद्दिष्टा का च कृष्णा गजानन ॥
किं ब्रह्म संसृतिः का मे वक्तुमर्हस्यनुग्रहात् ॥१॥

वरेण्य बोले हे गजानन ! शुक्ला गति और कृष्णा गति किसको कहते हैं, ब्रह्म क्या है ? और संसृति क्या है,सो आप मुझसे कृपाकर कहिये ॥ १ ॥

श्रीगजानन उवाच।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्ला कर्माहमयनं गतिः ॥
चान्द्रं ज्योतिस्तथा धूमो रात्रिश्च दक्षिणायनम् २

श्रीगणेशजी बोले हे राजन् ! अग्निके अभिमानी देवता और ज्योतिके अभिमानी देवता, दिवाभिमानी देवता, शुक्लपक्षाभिमानी देवता और अन्तमें उत्तरायणके षण्मासाभिमानी देवतोंका आश्रय करके जो चलते हैं, वह शुक्लागति कहाती है, और धूमाभिमानी देवता, रात्रि अभिमानी देवता, कृष्ण-

पक्ष अभिमानी देवता, चंद्र और ज्योति अभिमानी देवता, षण्मासाभिमानी देवताको आश्रय करके जो गमन करते हैं, वह कृष्णागति कहाती है ॥ २ ॥

कृष्णैते ब्रह्मसंसृत्योरवाप्तेः कारणं गती ॥
दृश्यादृश्यमिदं सर्वं ब्रह्मैवेत्यवधारय ॥ ३ ॥

इन्हीं दोनों गतियोंसे ब्रह्म और संसारकी प्राप्ति होती है, जो कुछ यह दृश्य और अदृश्य है, तुम इस सबको ब्रह्म जानो ३॥

क्षरं पञ्चात्मकं विद्धि तदन्तरक्षरं स्मृतम् ॥
उभाभ्यां यदतिक्रान्तं शुद्धं विद्धि सनातनम् ४॥

पंचमहाभूतोंको क्षर कहते हैं, उसके अनन्तर अक्षर है, इन दोनोंको अतिक्रमणकर शुद्ध सनातन ब्रह्मको जानो ॥ ४ ॥

अनेकजन्मसंभूतिः संसृतिः परिकीर्तिता ॥
संसृतिं प्राप्नुवन्त्येते ये तु मां गणयन्ति न ॥ ५ ॥

अनेक जन्मोंकी संभूति (ऐश्वर्य) को आवागमन कहते हैं इस संसृतिको वे प्राप्त होते हैं जो मुझे नहीं गिन्ते ॥ ५ ॥

ये मां सम्यगुपासन्ते परं ब्रह्म प्रयान्ति ते ॥
ध्यानाद्यैरुपचारैर्मां तथा पञ्चामृतादिभिः ॥६॥

जो मुझे सम्यक् प्रकारसे उपासना करते हैं, वे परब्रह्मको प्राप्त होते हैं ध्यान पूजन और पंचामृतादि ॥ ६ ॥

स्नानवस्त्राद्यलंकारसुगन्धधूपदीपकैः ॥
नैवेद्यैः फलतांबूलैर्दक्षिणाभिश्च योऽर्चयेत् ॥७॥

तथा स्नान, वस्त्र, अलंकार, उत्तम प्रकार गंध, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणादिसे जो मेरी पूजा करता है ॥७॥

भक्त्यैकचेतसा चैव तस्येष्टं पूरयाम्यहम् ॥
एवं प्रतिदिनं भक्त्या मद्भक्तो मां समर्चयेत् ॥८॥

भक्ति तथा एकचित्तसे जो मेरा भजन करता है मैं उसके मनोरथ पूरे करता हूं इसप्रकार प्रतिदिन भक्तिसे मेरे भक्त मेरी पूजा करते हैं ॥ ८ ॥

अथवा मानसी पूजां कुर्वीत स्थिरचेतसा ॥
अथवा फलपत्राद्यैः पुष्पमूलजलादिभिः ॥९॥

अथवा स्थिरचित्तसे मानसी पूजा करै, अथवा फल पत्र पुष्प मूल जलसे ॥ ९ ॥

पूजयेन्मां प्रयत्नेन तत्तदिष्टं फलं लभेत् ॥
त्रिविधास्वपि पूजासु श्रेयसी मानसी मता १०

जो यत्न करके मेरी पूजा करता है, वह इष्ट फलको प्राप्त होता है, तीनों प्रकारकी पूजामें मानसी पूजा श्रेष्ठ है ॥१०॥

साप्युत्तमा मता पूजानिच्छया या कृता मम ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिश्च यः ११

वहभी यदि कामनारहित होकर कीजाय तौ अति उत्तम है, ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ या संन्यासी ॥ ११ ॥

एकां पूजां प्रकुर्वाणोऽप्यन्यो वा सिद्धिमृच्छति॥
मदन्यदेवं यो भक्त्या द्विषन्मामन्यदेवताम् १२

अथवा और जो कोई एक मेरी पूजाको करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है, और मुझे छोडकर और मुझसे द्वेषकर जो और देवताका भक्तिसे पूजन करता है ॥ १२ ॥

सोऽपि मामेव यजते परं त्वविधितो नृप ॥
यो ह्यन्यदेवतां मां च द्विषन्नन्यां समर्चयेत् १३

हे राजन् ! अथवा मेरी पूजा विधिसे न करके और देवताका वा मेरा द्वेष पूजन करके करता है ॥ १३ ॥

याति कल्पसहस्रं स निरयान्दुःखभाक् सदा ॥
भूतशुद्धिं विधायादौ प्राणानां स्थापनं ततः १४

वह सहस्र कल्पवर्ष तक नरकमें पडकर सदा दुःख भोगता है, प्रथम भूतशुद्धि करके फिर प्राणायाम करे ॥ १४ ॥

आकृष्य चेतसो वृत्तिं ततो न्यासमुपक्रमेत् ॥
कृत्वान्तर्मातृकान्यासं बहिश्चाथ षडङ्गम् १५

फिर चित्तकी वृत्तियोंको आकर्षण करके न्यास करे, फिर मातृका न्यासकरे, फिर बहिरङ्ग षडङ्ग न्यास करे ॥ १५ ॥

न्यासं च मूलमंत्रस्य ततो ध्यात्वा जपेन्मनुम् ॥
स्थिरचित्तो जपेन्मन्त्रं यथा गुरुमुखागतम् १६॥

इसके उपरान्त मूलमंत्रका न्यास करके ध्यान करे और स्थिरचित्तसे गुरुमुखसे सुने मंत्रका जप करे ॥ १६ ॥

जपं निवेद्य देवाय स्तुत्वा स्तोत्रैरनेकधा ॥
एवं मां य उपासीत स लभेन्मोक्षमव्ययम्॥१७॥

फिर देवताके निमित्त जपको निवेदन कर अनेक प्रकारसे स्तोत्रका पाठ करे इस प्रकारसे जो मेरी उपासना करता है वह सनातनी मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

य उपासनया हीनो धिङ्नरो व्यर्थजन्मभाक् ॥
यज्ञोऽहमौषधं मन्त्रोऽग्निराज्यं च हविर्हुतम् १८॥

जो मनुष्य उपासनासे हीन है उसे धिक्कार है और उसका जन्म वृथा है, यज्ञ, औषध, मंत्र, आग्नि, आज्य, हवि, हुत यह सब मेरा ही स्वरूप है ॥ १८ ॥

ध्यानं ध्येयं स्तुतिं स्तोत्रं नतिर्भक्तिरुपासना ॥
त्रयीज्ञेयं पवित्रं च पितामहपितामहः ॥ १९ ॥

ध्यान, ध्येय, स्तुति, स्तोत्र, नमस्कार, भक्ति, उपासना, वेदत्रयीसे जानने योग्य, पवित्र, पितामहके पितामह यह सब मैं हीहूं ॥ १९ ॥

ॐकार पावनः साक्षी प्रभुर्मित्रं गतिर्लयः ॥
उत्पत्तिः पोषको बीजं शरणं वा स एव च॥२०॥

ॐकार, पावन, साक्षी, प्रभु, मित्र, गति, लय, उत्पत्ति, पोषक, बीज, शरण ॥ २० ॥

असन्मृत्युः सदमृतमात्मा ब्रह्माहमेव च ॥
दानं होमस्तपो भक्तिर्जपः स्वाध्याय एव च२१॥

इसी प्रकार असत्, सत्, अमृत, आत्मा तथा ब्रह्म यह सब मैं ही हूं, दान, होम, तप, भक्ति, जप, वेदपाठ ॥२१॥

यद्यत्करोति तत्सर्वं समे मयि निवेदयेत् ॥
योषितोऽथ दुराचाराः पापास्त्रैवर्णिकास्तथा२२

यह जो कुछ भी करे सब मुझे निवेदन करदे मेरे आश्रय करनेवाले स्त्री दुराचारी पापी क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि ॥ २२ ॥

मदाश्रया विमुच्यंते किं मद्भक्त्या द्विजातयः ॥
न विनश्यति मद्भक्तो ज्ञात्वेमा मद्विभूतयः २३॥

यह भी तो मेरा आश्रय करनेसे मुक्त होजाते हैं फिर मेरे भक्तोंकी तौ बातही क्या है, मेरा भक्त यह मेरी विभूति जानकर कभी नष्ट नहीं होता है ॥ २३ ॥

प्रभवं मे विभूतीश्च न देवा ऋषयो विदुः ॥
नानाविभूतिभिरहं व्याप्य विश्वं प्रतिष्ठितः २४

मेरे प्रभव (उत्पत्ति) और मेरी विभूतियों को देवता और ऋषिभी नहीं जानते, मैं अनेक विभूतियोंसे विश्वमें व्याप्त होकर स्थित हूं ॥ २४ ॥

यद्यच्छ्रेष्ठतमं लोके सा विभूतिर्निबोध मे ॥२५॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे उत्त० श्रीगजाननवरेण्यसंवादे उपासनायोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो जो इस लोकमें तेजयुक्त और श्रेष्ठतम हैं वह सब मेरी विभूति हैं ॥ २९ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेश० योगामृतार्थशास्त्रे गजाननवरेण्य० संवादे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायाम् उपासनायोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

वरेण्य उवाच ।

भगवन्नारदो मह्यं तव नाना विभूतयः ॥
उक्तवांस्ता अहं वेद न सर्वाः सोऽपि वेत्ति ताः १

वरेण्य बोले हे गणेशजी ! नारदजीके मुखसे मैंने तुम्हारी अनेक विभूति श्रवण की हैं उन्हें मैं जानताहूं,सब नहीं जान्ता, कारण कि सम्पूर्ण विभूति तो नारदजी भी नहीं जानते ॥१॥

त्वमेव तत्त्वतः सर्वा वेत्सि ता द्विरदानन ॥
निजं रूपमिदानीं मे व्यापकं चारु दर्शय ॥ २ ॥

हे गजानन ! आपही उन सबको तत्त्वसे जानते हो,इस समय मनोहर और व्यापक आप अपना रूप मुझे दिखाइये ॥ २ ॥

श्रीगजानन उवाच ।

एकस्मिन्मयि पश्य त्वं विश्वमेतच्चराचरम् ॥
नानाश्चर्याणि दिव्यानि पुरा दृष्टानि केनचित् ३

गणेशजी बोले राजन् ! इकले मुझहीमें तुम यह चराचर संसार देखो, और अनेक प्रकारके दिव्य आश्चर्य देखो जो पूर्वकालमें किसीनेही देखे हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानचक्षुरहं तेऽद्य सृजामि स्वप्रभावतः ॥
चर्मचक्षुः कथं पश्येन्मां विभुं ह्यजमव्ययम्॥४॥

मैं अपने प्रभावसे तुमको ज्ञाननेत्र देता हूं, कारण कि मुझ सर्वव्यापक अज अव्ययको चर्मचक्षु नहीं देखसक्ते ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ततो राजा वरेण्यः स दिव्यचक्षुरवैक्षत ॥
ईशितुः परमं रूपं गजास्यस्य महाद्भुतम् ॥५॥

ब्रह्माजी बोले ! तब वह वरेण्य राजा गणेशजीके महाअद्भुतरूप देखनेमें समर्थ दिव्य दृष्टिको प्राप्त होते हुए ॥ ५ ॥

असंख्यवक्त्रं ललितमसंख्यांघ्रिकरं महत् ॥
अनुलिप्तं सुगन्धेन दिव्यभूषाम्बरस्रजम् ॥ ६ ॥

असंख्य शोभायमान मुख, असंख्य हाथ, और सुगन्धिसे लिप्त, दिव्य भूषण वसन और मालासे शोभित ॥ ६ ॥

असंख्यनयनं कोटिसूर्यरश्मिधृतायुधम् ॥
तद्वर्ष्माणि त्रयो लोका दृष्टास्तेन पृथग्विधाः॥७॥

असंख्य नेत्र, करोडों सूर्यकी किरणोंकी समान प्रकाशित आयुध धारण किये, इस प्रकार उनके शरीरमें एक स्थानमें राजाने तीनोंलोक देखे ॥ ७ ॥

वरेण्य उवाच ।

दृष्ट्वैश्वरं परं रूपं प्रणम्य स नृपोऽब्रवीत् ॥
वीक्षेहं तव देहेऽस्मिन्देवानृषिगणान्पितॄन् ॥८॥

यह ईश्वरसम्बन्धी परम रूप देख प्रणाम करके राजा (वरेण्य) बोला-हे भगवन् ! मैं आपके इस देहमें देवता ऋषियोंके गण और पितरोंको देखता हूं ॥ ८ ॥

पातालानां समुद्राणां द्वीपानां चैव भूभृताम् ॥
महर्षीणां सप्तकं च नानार्थैः संकुलं विभो ॥९॥

हे विभो ! सात पाताल, सात समुद्र, सात द्वीप,सात पर्वत, सात ऋषि, यह सब अनेक अर्थोंसे युक्त देखता हूं ॥ ९ ॥

भुवोऽन्तरिक्षं स्वर्गांश्च मनुष्योरगराक्षसान् ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रान्देवाञ्जन्तूननेकधा ॥ १० ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, मनुष्य, सर्प, राक्षस, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र,देवता और भी अनेकप्रकारके जन्तु देखता हूं १०॥

अनाद्यनन्तं लोकादिमनन्तभुजशीर्षकम् ॥
प्रदीप्तानलसंकाशमप्रमेयं पुरातनम् ॥ ११ ॥

अनादि, अनन्त लोकादि, अनन्त भुजा और शिरोंसे युक्त जलती हुई अग्निकी समान प्रकाशमान अप्रमेय पुरातन तुमको देखता हूं ॥ ११ ॥

किरीटकुण्डलधरं दुर्निरीक्ष्यं मुदावहम् ॥
एतादृशं च वीक्षे त्वां विशालवक्षसं प्रभुम् १२॥

किरीट कुंडल धारण किये सहजसे देखनेके अयोग्य आनन्ददायक चौडी छातीयुक्त हे प्रभो ! इस प्रकारका तुम्हारा रूप देखताहूं ॥ १२ ॥

सुरविद्याधरैर्यक्षैः किन्नरैर्मुनिमानुषैः ॥
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गानतत्परैः ॥ १३ ॥

देवता, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, मुनि, मनुष्य, नृत्य करती हुई अप्सरा,गान करते हुए गंधर्वोंसे तुम्हारा स्वरूप सेवित है१३

वसुरुद्रादित्यगणैः सिद्धैः साध्यैर्मुदायुतैः ॥
सेव्यमानंमहाभक्त्या वीक्ष्यमाणं सुविस्मितैः१४

आठ वसु, बारह आदित्योंके गण, सिद्ध, साध्य यह सब

तुम्हारी सेवा करते, और महाभक्तिसे विस्मयको प्राप्त होकर आपको देखते हैं ॥ १४ ॥

वेत्तारमक्षरं वेद्यं धर्मगोप्तारमीश्वरम् ॥
पातालानिदिशःस्वर्गान्भुवंव्याप्याखिलंस्थितम्

यह तुम्हें रूपके ज्ञाता, अक्षर, वेद्य (जानने योग्य) धर्मके रक्षक, ईश्वर, पाताल, दिशा, स्वर्ग, पृथ्वी इन सबमें व्यापक और ईश्वर जानते हैं ॥ १५ ॥

भीता लोकास्तथा चाहमेवं त्वां वीक्ष्य रूपिणम् ।
नानादंष्ट्राकरालं च नानाविद्याविशारदम् १६॥

हे भगवन् ! इस तुम्हारे रूपको देखकर सम्पूर्ण लोक तथा मैं भी डरगया हूं, यह आपका मुख अनेक तीक्ष्ण डाढोंसे भयंकर है आप अनेक विद्याओंके पार गन्ता हो ॥ १६ ॥

प्रलयानलदीप्तास्यं जटिलं च नभःस्पृशम् ॥
दृष्ट्वागणेश ते रूपमहं भ्रान्त इवाभवम् ॥ १७ ॥

प्रलयकी अग्निकी समान दीप्तिमान् तुम्हारा मुख है, जिसकी जटा आकाशको छूटी है, हे गणेशजी ! आपका यह रूप देखकर मैं भ्रान्त हुआ हूं ॥ १७ ॥

देवा मनुष्या नागाद्याः खलास्त्वदुदरेशयाः ॥
नानायोनिभुजश्चान्ते त्वय्येव प्रविशंति च १८

देवता मनुष्य नागादि और खल (दुष्ट) तुम्हारे उदरमें शयन करते हैं जो अनेक योनियोंको भोगकर अन्तमें तुममें प्रवेश करते हैं ॥ १८ ॥

अब्धेरुत्पद्यमानास्ते यथा जीमूतबिन्दवः ॥
त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणो मरुत् १९॥

जैसे सागरसे उत्पन्न हुए मेघके जलबिन्दु फिर उसीमें लीन होते हैं इसी कारण इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, तुमही हो ॥ १९ ॥

गुह्यकेशस्तथेशानः सोमः सूर्योऽखिलं जगत् ॥
नमामि त्वामतः स्वामिन्प्रसादं कुरु मेऽधुना २०

कुबेर, ईशान, सोम (चंद्र) और सम्पूर्ण जगत् सब तुमही हो, हे स्वामी ! मैं तुमको नमस्कार करता हूं, अब आप मेरे ऊपर कृपा करो ॥ २० ॥

दर्शयस्व निजं रूपं सौम्यं यत्पूर्वमीक्षितम् ॥
को वेद लीलास्ते भूमन् क्रियमाणा निजेच्छया २१

पहले देखाहुआ आप अपना सौम्यरूप मुझे दिखाइये, हे भगवन् ! अपनी इच्छासे क्रीडाकरनेवाले आपकी लीलाको कौन जान सक्ता है ॥ २१ ॥

अनुग्राहान्मयादृष्टमैश्वरं रूपमीदृशम् ॥
ज्ञानचक्षुर्यतो दत्तं प्रसन्नेन त्वया मम ॥ २२ ॥

आपकी कृपासे मैंने यह इस प्रकारका ईश्वर सम्बन्धी रूप देखा, जो आपने प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानचक्षु दिये॥२२॥

श्रीगजानन उवाच ।

नेदं रूपं महाबाहो मम पश्यन्त्ययोगिनः ॥
सनकाद्या नारदाद्याःपश्यन्ति मदनुग्रहात् २३

श्रीगणेशजी बोले,हे महाभुज ! योग न करनेवाले इस मेरे रूपका कभी भी दर्शन नहीं पाते, सनकादि नारदादि मेरे अनुग्रहसे इस रूपका दर्शन करते हैं ॥ २३ ॥

चतुर्वेदार्थतत्त्वज्ञाश्चतुःशास्त्रविशारदाः ॥
यज्ञदानतपोनिष्ठा न मे रूपं विदन्ति ते ॥२४॥

चारों वेदोंके अर्थके तत्त्व जाननेवाले सम्पूर्ण शास्त्रोंमें कुशल, यज्ञ, दान और तप करनेहारे भी मेरे रूपको नहीं जानते ॥ २४ ॥

शक्योऽहं वीक्षितुं ज्ञातुं प्रवेष्टुं भक्तिभावतः ॥
त्यज भीतिं च मोहं च पश्य मां सौम्यरूपिणम् २५

मैं भक्तिभावसे जाननेकूं दीखनेकूं प्राप्त होनेकूं समर्थ हूं अब तू भय और मोहको त्याग कर मेरे योग्य रूपको देख ॥२५॥

मद्भक्तो मत्परः सर्वसंगहीनो मदर्थकृत् ॥
निष्क्रोधःसर्वभूतेषु समो मामेति भूभुज ॥२६॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराण उत्तरखण्डे श्रीगजाननवरेण्यसंवादे विश्वरूपदर्शनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हे राजन्! जो भक्त मेरे परायण सर्व संगत्यागी सब कर्महीमें समर्पण करते हैं, और क्रोध त्यागन कर सर्व प्राणियोंमें समान दृष्टि करते हैं, वह मुझको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेश० योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपु० पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां विश्वरूपदर्शनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वेरण्य उवाच ।

अनन्यभावास्त्वां सम्यङ्मूर्तिमन्तमुपासते ॥
योऽक्षरं परमं व्यक्तं तयोः कस्ते मतोऽधिकः १॥

वरेण्य बोले हे भगवन् ! जो मूर्तिमान् तुमको अनन्यभावसे भजन करते हैं और जो अक्षर परम और व्यक्तरूपसे तुम्हारी उपासना करते हैं, उनमें अधिक कौन हैं ॥ १ ॥

असि त्वं सर्ववित्साक्षी भूतभावन ईश्वरः ॥
अतस्त्वां परिपृच्छामि वद मे कृपया विभो२॥

हे ईश्वर तुम सब जाननेवाले सबके साक्षी भूतभावन(जगतके उत्पन्न कर्त्ता) ईश्वर हो इस कारण मैं तुमसे पूछताहूं. आप कृपाकर कहिये ॥ २ ॥

श्रीगजानन उवाच ।

यो मां मूर्तिधरं भक्त्या मद्भक्तः परिषेवते ॥
स मे मान्योऽनन्यभक्तिर्नियुज्य हृदयं मयि ३॥

श्रीगणेशजी बोले जो भक्तिपूर्वक मूर्तिधारी मेरी उपासना करता है, वह अनन्य भक्तिमान् हृदयमें मुझे धारण करनेवाला मेरा मान्य है ॥ ३ ॥

खगणं स्ववशं कृत्वाखिलभूतहितार्थकृत् ॥
ध्येयमक्षरमव्यक्तं सर्वगं कूटग स्थिरम् ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वशमें कर सब प्राणियोंका हित करता हुआ जो अक्षर और अव्यक्त, सर्वव्यापी कूटस्थ (निश्चल) स्थिर ब्रह्मका ध्यान करता है ॥ ४ ॥

सोऽपि मामेत्यनिर्देश्यं मत्परो य उपासते ॥
संसारसागरादस्मादुद्धरामि तमप्यहम् ॥ ५ ॥

वहभी जो अनिर्देश्य (जाति गुण क्रियासे) जाननेको अशक्य मेरी उपासना करता है उसको मैं संसारसागरसे उद्धार करता हूं ॥ ५ ॥

अव्यक्तोपासनादुःखमधिकं तेन लभ्यते ॥
व्यक्तस्योपालनात्साध्यं तदेवाव्यक्तभक्तितः ६॥

अव्यक्त ब्रह्मकी उपासना करनेवाले जनोंको अधिक क्लेश भोगना पडता है, जो व्यक्तस्वरूपकी उपासना भक्तिसे प्राप्त होता है, वही अव्यक्तकी भक्तिसे होता है ॥ ६ ॥

भक्तिश्चैवादरश्चात्र कारणं परमं मतम् ॥
सर्वेषां विदुषां श्रेष्ठो ह्यकिंचिज्ज्ञोऽपिभक्तिमान्७

इसमें मुख्य कारण भक्ति ही है, सम्पूर्ण विद्वानोंमें थोडा जाननेवालाभी यदि भक्तिमान हो तो वह उनसे श्रेष्ठ है ॥७॥

भजन्भक्त्या विहीनो यः स चाण्डालोऽभिधीयते ।
चाण्डालोऽपि भजन्भक्त्या ब्राह्मणेभ्योऽधिकोमम॥

जो भक्तिविहीन होकर भजन करता है, वह चाण्डाल है और चाण्डाल होकर मेरी भक्तिसे भजन करे और ब्राह्मण मेरा भक्त न हो तो वह उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥

शुकाद्याः सनकाद्याश्च पुरा मुक्ता हि भक्तितः ॥
भक्त्यैव मामनुप्राप्ता नारदाद्याश्चिरायुषः ॥ ९ ॥

शुकादि सनकादिक भक्तिसे ही मुक्त हुए हैं, और भक्तिसेही नारद और मार्कण्डेयादि मुझको प्राप्त हुए हैं ॥ ९ ॥

अतो भक्त्या मयि मनो निधेहि बुद्धिमेव च ॥
भक्त्या यजस्व मां राजंस्ततो मामेव यास्यसि १०

इस कारण भक्तिसे मन और बुद्धि मुझमें लगाओ, हे राजन्! भक्तिसे मेरा यजन करो तो मुझको प्राप्त होगे ॥ १० ॥

असमर्थोऽर्पितुं स्वान्तमेवं मयि नराधिप ॥
अभ्यासेन च योगेन ततो गन्तुं यतस्व माम् ११

हे राजन् ! जो मुझमें एक संग अपना मन न लगासको तो अभ्यासयोगसे मुझे प्राप्त होनेका यत्न करो ॥ ११ ॥

तत्रापि त्वमशक्तश्चेत्कुरु कर्म मदर्पणम् ॥
ममानुग्रहतश्चैवं परां निर्वृतिमेष्यसि ॥ १२ ॥

और जो यहभी न हो सके तो जो कुछ कर्म करो सो मेरे अर्पण करो, मेरी कृपासेही परम शान्तिको प्राप्त होगे ॥१२॥

अथैतदप्यनुष्ठातुं न शक्तोऽसि तदा कुरु ॥
प्रयत्नतःफलत्यागं त्रिविधानां हि कर्मणाम् १३

और जो यहभी अनुष्ठान न करसको तो यत्नपूर्वक तीनों प्रकारके कर्मोंका फल त्यागन करो ॥ १३ ॥

श्रेयसी बुद्धिरावृत्तेस्ततो ध्यानं परं मतम् ॥
ततोऽखिलपरित्यागस्ततःशान्तिर्गरीयसी १४॥

प्रथम मेरेमें बुद्धि लगनी श्रेष्ठ है,उससे ध्यान श्रेष्ठ है,उससे सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग श्रेष्ठ है, इससे अत्यन्त श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त होती है॥ १४ ॥

निरहंममताबुद्धिरद्वेषः करुणासमः ॥
लाभालाभे सुखेदुःखे मानामाने समे प्रियः १५

अहंकारका त्याग, ममता बुद्धिका न होना, द्वेष न करना, सबमें समान दृष्टि, लाभ अलाभ, सुख दुःख, मान अपमानमें एक दृष्टि रहे, सो मेरा प्यारा है ॥ १५ ॥

यं वीक्ष्य न भयं याति जनस्तस्मान्न च स्वयम् ॥
उद्वेगभीःकोपमुद्भीरहितो यः स मे प्रियः॥१६॥

जिसको देखकर किसी प्राणीका भय नहीं होता, और जो मनुष्योंसे शंकायुक्त नहीं होता है, उद्वेग और क्रोधके भयसे जो रहित हो वही मेरा प्रिय है ॥ १६ ॥

रिपौ मित्रेऽथ गर्हायां स्तुतौ शोके समः समुत्॥
मौनी निश्चलधीभक्तिरसंगः स च मे प्रियः १७

शत्रु मित्र निन्दा स्तुति शोकमें जिसका चित्त एक है मौनी, स्थिरचित्त, भक्तिमान्, असंग, ऐसाही प्राणी मेरा प्रिय है ॥ १७ ॥

संशीलयति यश्चैनमुपदेशं मया कृतम् ॥
स वंद्यःसर्वलोकेषु मुक्तात्मा मे प्रियःसदा १८॥

जो मेरे किये उपदेशको विचार करता है, वह त्रिलोकीमें नमस्कारके योग्य है और मेरा प्रिय है ॥ १८ ॥

अनिष्टाप्तौ च न द्वेष्टीष्टप्राप्तौ न च तुष्यति ॥
क्षेत्रतज्ज्ञौ च यो वेत्ति स मे प्रियतमो भवेत् १९

जो अनिष्टकी प्राप्तिमें द्वेष और इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष नहीं करता है क्षेत्र और क्षेत्रज्ञको जो जानता है,वही मेरा प्यारा है॥१९॥

वरेण्य उवाच।

किं क्षेत्रं कश्च तद्वेत्ति किं तज्ज्ञानं गजानन ॥
एतदाचक्ष्व मह्यं त्वं पृच्छते करुणाम्बुधे ॥२०॥

वरेण्य बोले भगवन्! क्षेत्र क्या है और उसका जाननेवाला कौन है, उसका ज्ञान क्या है, हे करुणासागर मुझ प्रश्न करनेवालेसे यह सब आप वर्णन कीजिये ॥ २० ॥

श्रीगजानन उवाच ॥

पञ्च भूतानि तन्मात्राः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च ॥
अहंकारो मनो बुद्धिः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि च२१॥

श्रीगणेशजी बोले पांच भूत और उनकी तन्मात्रा, पंच कर्मेन्द्रिय, अहंकार, मन, बुद्धि और पांच ज्ञानेंद्रिय ॥ २१ ॥

इच्छाव्यक्तं धृतिद्वेषौ सुखदुःखे तथैव च ॥
चेतनासहितश्चायं समूहः क्षेत्रमुच्यते ॥ २२ ॥

इच्छा, व्यक्त, धैर्य, द्वेष, सुख, दुःख और चेतना सहित यह समूह, सब क्षेत्र कहाता है ॥ २२ ॥

तज्ज्ञं त्वं विद्धि मां भूप सर्वान्तर्यामिणं विभुम् ॥
अयं समूहोऽहं चापि यज्ज्ञानविषयौ नृप ॥२३॥

हे राजन् ! उसका, जाननेवाला सर्वान्तर्यामी तुम मुझको (क्षेत्रज्ञ) जानो, मैं और यह समूह यह दोनों ज्ञेय अर्थात् ज्ञानके विषय हैं ॥ २३ ॥

आर्जवं गुरुशुश्रूषाविरक्तिश्चेन्द्रियार्थतः ॥
शौचं क्षान्तिरदंभश्च जन्मादिदोषवीक्षणम् ॥२४॥

सरलता, गुरुशुश्रूषा, इन्द्रियोंका विषयोंसे वैराग्य, पवित्रता, सहनशीलता, पाखण्डका त्याग, जन्ममरणादि दोषोंमें दृष्टि ॥ २४ ॥

समदृष्टिर्दृढा भक्तिरेकान्तित्वं शमो दमः ॥
एतैर्यच्च युतं ज्ञानं तज्ज्ञानं विद्धि बाहुज ॥२५॥

समदृष्टिता, दृढभक्ति, एकान्तता, शम, दम, हे राजन् ! इनके सहित जो ज्ञान है, उसीको ज्ञान कहते हैं ॥ २५ ॥

तज्ज्ञानविषयं राजन्ब्रवीमि त्वं शृणुष्व मे ॥
यज्ज्ञात्वेति च निर्वाणं मुक्त्वा संसृतिसागरम् २६

हे राजन्! इस ज्ञानके विषयको मैं कहता हूं तुम श्रवण करो जिसके जाननेसे संसारसागरसे छूटकर मुक्त होजाओगे॥२६॥

यदनादीन्द्रियैर्हीनं गुणभुग्गुणवर्जितम् ॥
अव्यक्तं सदसद्भिन्नमिन्द्रियार्थावभासकम्॥२७॥

जो अनादि इन्द्रियरहित सत्‌रजतमके गुणोंका भोक्ता, गुणवर्जित, अव्यक्त, सत्‌असत्‌से परे, इन्द्रियोंके विषयोंका प्रकाशक ॥ २७ ॥

विश्वभृच्चाखिलव्यापि त्वेकं नानेव भासते ॥
बाह्याभ्यन्तरतः पूर्णमसंगं तमसः परम् ॥२८॥

विश्वका धारण करनेहारा, सम्पूर्णमें व्यापक, एकही ब्रह्म अनेकरूपसे भासता है, वह बाह्य भीतरसे पूर्ण, असंग और अंधकारसे परे हैं ॥ २८ ॥

दुर्ज्ञेयं चातिसूक्ष्मत्वाद्दीप्तानामपि भासकम् ॥
ज्ञेयमेतादृशं विद्धि ज्ञानगम्यं पुरातनम् ॥२९॥

अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह जाना नहीं जाता, ज्योतियोंका भी प्रकाश करनेवाला है, इस प्रकार ज्ञानसे जानने योग्य पुरातन पुरुषको ज्ञेय ब्रह्म जानो ॥ २९ ॥

एतदेव परं ब्रह्म ज्ञेयमात्मा परोऽव्ययः ॥
गुणान्प्रकृतिजान्भुङ्क्ते पुरुषः प्रकृतेः परः ॥३०॥

यही परब्रह्म ज्ञेय है, यही आत्मा पर अव्यय प्रकृतिसे परे पुरुष कहाता है, तथा प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणोंको भोगता है ॥ ३० ॥

गुणैस्त्रिभिरियं देहे बध्नाति पुरुषं दृढम् ॥
यदा प्रकाशः क्षांतिश्च वृद्धे सत्त्वे तदाधिकम् ३१॥

प्रकृतिके तीन गुणही इस पुरुषको देहमें बांधते हैं, जिस समय देहमें शांति और प्रकाशकी वृद्धि हो तब सतोगुणकी वृद्धि होती है ॥ ३१ ॥

लोभोऽशमः स्पृहारंभः कर्मणां रजसो गुणः ॥
मोहोऽप्रवृत्तिश्चाज्ञानं प्रमादस्तमसो गुणः ॥३२॥

लोभ, अशांति, स्पृहा, यह रजोगुणके धर्म हैं, मोह, अप्रवृत्ति, अज्ञान, प्रमाद यही तमोगुण जानना ॥ ३२ ॥

सत्त्वाधिकः सुखं ज्ञानं कर्मसंगं रजोऽधिकः ॥
तमोऽधिकश्च लभते निद्रालस्यं सुखेतरत् ॥३३॥

सतोगुण अधिक होनेसे सुख ज्ञानकी , रजोगुण अधिक होनेसे कर्मकी प्राप्ति, और तमोगुण अधिक होनेसे सुखसे इतर निद्रा और आलस्यकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

Te. ग 99०8

एषु त्रिषु प्रवृद्धेषु मुक्तिसंसृतिदुर्गतीः ॥
प्रयान्ति मानवा राजंस्तस्मात्सत्त्वयुतोभव ३४

इन तीनोंकी वृद्धिमें क्रमसे मुक्ति, संसार और दुर्गतिकी मनुष्योंको प्राप्ति होती है इस कारण हे राजन्! सतोगुणयुक्त हूजिये ॥ ३४ ॥

ततश्च सर्वभावेन भज त्वं मां नरेश्वर ॥
भक्त्या चाव्यभिचारिण्यासर्वत्रैवचसंस्थितम् ३५

हे नरेश्वर! तदनन्तर सर्वभावसे तुम मेरा भजन करो, और निश्चल भक्तिसे सब स्थानमें मुझे स्थित जानो ॥ ३५ ॥

अग्नौ सूर्ये तथा सोमे यच्च तारासु संस्थितम् ॥
विदुषि ब्राह्मणे तेजो विद्धि तन्मामकं नृप॥३६॥

अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, तारागण, विद्वान्, ब्राह्मणमें, जो तेज है वह मेराही तेज जानो ॥ ३६ ॥

अहमेवाखिलं विश्वं सृजामि विसृजामि च ॥
औषधीस्तेजसासर्वा विश्वंचाप्याययाम्यहम्३७

मैंही सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न कर संहार करता हूं और अपने तेजसे औषधी और जगतको मैंही युक्त करता हूं॥३७॥

सर्वेन्द्रियाण्यधिष्ठाय जाठरं च धनंजयम् ॥
भुनज्मिचाखिलान्भोगान्पुण्यपापविवर्जितः ३८

और सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें तथा उदरमें स्थित होकर धनञ्जय-नामक प्राण और जाठराग्नीरूपसे पापपुण्य रहित होकर सम्पूर्ण भोगोंको भोगता हूं ॥ ३८ ॥

अहं विष्णुश्च रुद्रश्च ब्रह्मा गौरी गणेश्वरः ॥
इन्द्राद्या लोकपालाश्च ममैवांशसमुद्भवाः॥३९॥

मैंही विष्णु, ब्रह्मदेव, रुद्र, गौरी, गणपति हूं, इन्द्रादिक लोकपाल, मेरेही अंशसे उत्पन्न हुए हैं ॥ ३९ ॥

येनयेनहि रूपेण जनो मां पर्युपासते ॥
तथातथा दर्शयामि तस्मै रूपं सुभक्तितः॥४०॥

जिस जिस रूपसे प्राणी मेरी, उपासना करते हैं, उनकी भक्तिके अनुसार उन्हें वैसा वैसाही रूप दिखाता हूं ॥ ४० ॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञाता ज्ञानं ज्ञेयं मयेरितम् ॥
अखिलं भूपते सम्यगुपपन्नाय पृच्छते ॥ ४१ ॥

ॐतत्सादीति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासुयोगामृता-र्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उत्त० गजाननवरेण्यसंवादे क्षेत्रज्ञातृज्ञेयविवेकयोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

इस प्रकार क्षेत्र ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका विषय तुमसे मैंने वर्णन किया, हे राजन्! यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर सम्पूर्ण कहा, जो तुमने पूछता था ॥ ४१ ॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उत्तरखण्डे गजाननवरेण्यसंवादे पण्डित-ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां क्षेत्रज्ञातृज्ञेय विवेकयोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीगजानान उवाच।

दैव्यासुरी राक्षसी च प्रकृतिस्त्रिविधा नृणाम् ॥
तासां फलानि चिह्नानि संक्षेपात्तेऽधुना ब्रुवे॥१॥

श्रीगणेशजी बोले—दैवी, आसुरी, राक्षसी तीन प्रकारकी मनुष्योंकी प्रकृति होती है, अनेक फल और चिह्न संक्षेपसे वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

आद्या संसाधयेन्मुक्तिं द्वे परे बन्धनं नृप ॥
चिह्नं ब्रवीमि चाद्यायास्तन्मे निगदतः शृणु २॥

दैवी प्रकृति मुक्तिकी साधना करती है, आगेकी दोनों बंधनमें डालती हैं। इनमें पहले दैवी प्रकृतिके चिह्न कहता हूं सो तुम सुनो ॥ २ ॥

अपैशुन्यं दयाक्रोधोऽचापल्यं धृतिरार्जवम् ॥
तेजोऽभयमहिंसा च क्षमा शौचममानिता ॥ ३ ॥

चुगली न करना, दया, अक्रोध, धैर्य, अचपलता, आर्जव, तेज, अभय, अहिंसा, क्षमा, शौच, निरभिमान ॥ ३ ॥

इत्यादि चिह्नमाद्याया आसुर्याः शृणु सांप्रतम् ॥
अतिवादोऽभिमानश्च दर्पोऽज्ञानं सकोपता ॥ ४ ॥

इत्यादि चिह्नयुक्त दैवी प्रकृति समझनी । अब आसुरीके चिह्न सुनो—अतिवाद, अभिमान, दर्प, अज्ञान, क्रोध ॥ ४ ॥

आसुर्या एवमाद्यानि चिह्नानि प्रकृतेर्नृप ॥
निष्ठुरत्वं मदो मोहोऽहंकारो गर्व एव च ॥ ५ ॥

हे राजन् ! यह आसुरी प्रकृतिके चिह्न हैं, निष्ठुरता, मद, मोह, अहंकार, गर्व ॥ ५ ॥

द्वेषोऽहिंसाऽदया क्रोध औद्धत्यं दुर्विनीतता ॥
अभिचारिककर्तृत्वं क्रूरकर्मरतिस्तथा ॥ ६ ॥

द्वेष, हिंसा, अदया, क्रोध, उद्धत्ता, विनयहीनता, दूसरोंके नाशके निमित्त कर्मारंभ, क्रूर कर्मोंमें प्रीति ॥ ६ ॥

अविश्वासः सतां वाक्येऽशुचित्वं कर्महीनता ॥
निन्दकत्वं च वेदानां भक्तानामसुरद्विषाम् ॥७॥

श्रेष्ठ पुरुषोंके वाक्यमें अविश्वास, अपवित्रता, कर्मोंका न करना, वेद और देवताओंकी निन्दा करना ॥ ७ ॥

मुनिश्रोत्रियविप्राणां तथा स्मृतिपुराणयोः ॥
पाखण्डवाक्येविश्वासःसंगतिर्मलिनात्मनाम् ८

मुनि, श्रोत्रिय, ब्राह्मण, तथा स्मृति, पुराणकी निन्दा, पाखण्ड वाक्यमें विश्वास, दुष्टों तथा मलीन पुरुषोंकी संगति करनी ॥ ८ ॥

सदम्भकर्मकर्तृत्त्वं स्पृहा च परवस्तुषु ॥
अनेककामनावत्त्वं सर्वदाऽनृतभाषणम् ॥ ९ ॥

पांखड सहित कर्म करना, दूसरेकी वस्तुओंमें इच्छा, अनेक कामना होनी, सदा झूंठ बोलना ॥ ९ ॥

परोत्कर्षासहिष्णुत्वं परकृत्यपराहतिः ॥
इत्याद्या बहवश्चान्ये राक्षस्याः प्रकृतेर्गुणाः॥१०॥

दूसरेकी उत्कर्षता न सहनी, दूसरेके कृत्यको नष्ट करना, इत्यादिक बहुत सारे राक्षसी प्रकृतिके गुण हैं ॥ १० ॥

पृथिव्यां स्वर्गलोके च परिवृत्य वसन्ति ते ॥
मद्भक्तिरहिता लोका राक्षसीं प्रकृतिं श्रिताः ११

पृथ्वी और स्वर्ग लोकमें यह सब गुण रहते हैं,जो लोग मेरी भक्तिसे रहित हैं,वेही राक्षसी प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं॥ ११॥

तामसीं ये श्रिता राजन्यान्ति ते रौरवं ध्रुवम् ॥
अनिर्वाच्यं च ते दुःखं भुञ्जते तत्र संस्थिताः १२

हे राजन्!जो तामसी प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं,वे रौरवनरकको प्राप्त होते हैं,वहां वे अकथनीय दुःखको अवश्य भोगते हैं१२॥

दैवान्निःसृत्य नरकाज्जायन्ते भुवि कुब्जकाः ॥
जात्यन्धाःपङ्गवो दीना हीनजातिषु ते नृप १३

कदाचित् दैववश नरकसे निकलकर पृथ्वीमें कुवडे होते हैं वा जन्मान्ध, लँगडे, दीन और हीन जातिमें जन्म लेते हैं १३

पुनः पापसमाचारा मय्यभक्ताः पतन्ति ते ॥
उत्पतन्तिहि मद्भक्तायांकांचिद्योनिमाश्रिताः१४

पापाचरणवाले मुझमें भक्ति न करनेवाले पतित होते हैं, चाहें किसी योनिमें जन्म लें परन्तु मेरे भक्त नष्ट नहीं होते, उद्धार होजाते हैं ॥ १४ ॥

लभन्ते स्वर्गतिं यज्ञैरन्यैर्धर्मैश्च भूमिप ॥
सुलभा सा सकामानां मयिभक्तिः सुदुर्लभा१५

हे राजन्! यज्ञसे अथवा दूसरे कर्मोंसे स्वर्गकी गति प्राप्त होती है, सो यह सकामी पुरुषोंको सुलभ है, परन्तु मुझमें भक्ति होनी दुर्लभ है ॥ १५ ॥

विमूढा मोहजालेन बद्धाः स्वेन च कर्मणा ॥
अहं हन्ता अहं कर्त्ता अहं भोक्तेति वादिनः १६॥

मूर्ख लोग मोहजाल तथा अपने कर्मोंसे बंधनमें पडते हैं, वे मैंही हन्ता, मैंही करता, मैंही भोक्ता ऐसे कहा करते हैं १६॥

अहमेवेश्वरः शास्ता अहं वेत्ता अहं सुखी ॥
एतादृशीमतिर्न्नृणामधः पातयतीह तान् ॥१७॥

मैं ईश्वर, मैं शिक्षक, मैं जाननेवाला, मैंही सुखी हूं, इस प्रकारकी मति मनुष्योंको नरकमें लेजाती है ॥ १७ ॥

तस्मादेतत्समुत्सृज्य दैवीं प्रकृतिमाश्रय ॥
भक्तिं कुरु मदीयां त्वमनिशं दृढचेतसा ॥१८॥

इस कारण इसको छोडकर दैवी प्रकृतिको आश्रय करो और तुम दृढ चित्तसे मेरी दृढ भक्ति करो ॥ १८ ॥

सापि भक्तिस्त्रिधा राजन्सात्त्विकी राजसीतरा॥
यद्देवान्भजते भक्त्या सात्त्विकी सामताशुभा १९

हे राजन् ! वह भक्ति सात्त्विकी राजसी तामसी इन भेदोंसे तीन प्रकारकी है, जो भक्तिसे देवताओंको भजन करते हैं, वह सात्त्विकी भक्ति है ॥ १९ ॥

राजसी सा तु विज्ञेया भक्तिर्जन्ममृतिप्रदा ॥
यक्षांश्चैव रक्षांसि यजन्ते सर्वभावतः ॥ २० ॥

और राजसी भक्ति जन्म मृत्यु देनेवाली है, जिसमें सर्व भावसे यक्ष और राक्षसोंकी पूजा होती है ॥ २० ॥

वेदेनाविहितंक्रूरं साहंकारं सदम्भकम् ॥
भजन्ते प्रेतभूतादीन्कर्म कुर्वन्ति कामुकम् ॥२१॥

वेद विधानसे रहित क्रूर अहंकार तथा दम्भता सहित जो प्रेतभूतादिकोंको भजते हैं और कामुक कर्म करते हैं ॥२१॥

शोषयन्तो निजं देहमन्तःस्थं मां दृढाग्रहाः ॥
तामस्येतादृशी भक्तिर्नृणां सा निरयप्रदा ॥२२॥

अपने देहको शोषते हैं और हृदयमें स्थित मुझकूं दृढ आग्रह करते हैं यह तामसी भक्ति है जो मनुष्योंको नरक देनेहारी है ॥ २२ ॥

कामो लोभस्तथा क्रोधो दंभश्चत्वार इत्यमी ॥
महाद्वाराणि वीचीनां तस्मादेतांस्तु वर्जयेत् २३॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृ-
तार्थशास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ० श्रीगजाननवरेण्य-
संवादे उपदेशयोगो नाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

काम, लोभ, क्रोध, दंभ यह नरकके चार महाद्वार हैं इस कारण इनको त्यागना चाहिये ॥ २३ ॥

ॐतत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थ-
शास्त्रे श्रीगणेशपुराणे उ०श्रीगजाननवरेण्यसम्वादे पण्डित-
ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायामुपदेशयोगोनाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ श्रीगजानन उवाच ॥

तपोऽपि त्रिविधं राजन्कायिकादिप्रभेदतः ॥
ऋजुतार्जवशौचानि ब्रह्मचर्यमहिंसनम् ॥ १ ॥

श्रीगणेशजी बोले हे राजन्!कायवचनमन इनभेदोंसे तपभी तीन प्रकारकाहै ऋजुता, आर्जव, पवित्रता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा १

गुरुविज्ञद्विजातीनां पूजनं चासुरद्विषाम् ॥
स्वधर्मपालनं नित्यं कायिकं तप ईदृशम् ॥२॥

गुरु, पण्डित, ब्राह्मण देवतोंका पूजन करना, नित्य स्वधर्म पालन करना, यह कायिक तप कहा है ॥ २ ॥

मर्मास्पृक्च प्रियं वाक्यमनुद्वेगं हितं ऋतम् ॥
अधीतिर्वेदशास्त्राणां वाचिकं तप ईदृशम् ॥३॥

हृदयग्राहक प्रिय वचन बोलना,उद्वेग रहित हितकारी और सत्य भाषण करना, वेदशास्त्रोंका पढना यह वचनका तप कहा है ॥ ३ ॥

अन्तःप्रसादःशान्तत्वं मौनमिन्द्रियनिग्रहः ॥
निर्मलाशयता नित्यं मानसं तप ईदृशम् ॥४॥

अन्तःकरण प्रसन्न, शान्ति, मौन, जितेन्द्रियता, सदा निर्मल भाव रखना, यह मानसिक तप है ॥ ४ ॥

अकामतः श्रद्धया च यत्तपः सात्त्विकं च तत् ॥
ऋद्ध्यै सत्कारपूजार्थं सदम्भं राजसं तपः ॥५॥

अकामता और श्रद्धासे जो तप किया जाता है, वह सात्त्विक है, ऐश्वर्य सत्कार पूजाके निमित्त और दम्भ सहित जो किया जाता है वह राजसी तप है ॥ ५ ॥

तदस्थिरं जन्ममृती प्रयच्छति न संशयः ॥
परात्मपीडकं यच्च तपस्तामसमुच्यते ॥ ६ ॥

रजोगुणी तप जन्म मृत्यु और अस्थिरताका देनेहारा है और जिसमें दूसरेको पीडा हो वह तमोगुणी तप है ॥ ६ ॥

विधिवाक्यप्रमाणार्थं सत्पात्रे देशकालतः ॥
श्रद्धया दीयमानं यद्दानं तत्सात्त्विकं मतम् ॥७॥

विधियुक्त प्रमाणपूर्वक देशकालमें श्रद्धापूर्वक जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक दान है ॥ ७ ॥

उपकारं फलं वापि काङ्क्षिद्भिर्दीयते नरैः ॥
क्लेशतो दीयमानं वा भक्त्या राजसमुच्यते ॥८॥

और जो उपकार वा फलकी कामनासे मनुष्य दान करते हैं ऐसा दान जो क्लेश अथवा भक्ति किसी प्रकारसे दिया वह राजसी दान कहाता है ॥ ८ ॥

अकालदेशतोऽपात्रेऽवज्ञया दीयते तु यत् ॥
असत्काराच्च यद्दत्तं तद्दानं तामसं स्मृतम् ॥९॥

जो देश काल रहित अपात्रमें दिया जाता है, अथवा जो दान अवज्ञासे दिया जाता है, वह तमोगुणी दान है ॥ ९ ॥

ज्ञानं च त्रिविधं राजञ् शृणुष्व स्थिरचेतसा ॥
त्रिधा कर्म च कर्त्तारं ब्रवीमि ते प्रसंगतः ॥१०॥

हे राजन् ! मन लगाकर सुनो,ज्ञानभी तीनही प्रकारका है, कर्म और कर्त्ताभी तीनही प्रकारकेहैं,सो मैं प्रसंगसे कहताहूं १०

नानाविधेषु भूतेषु मामेकं वीक्षते तु यः ॥
नाशवत्सु च नित्यं मां तज्ज्ञानं सात्त्विकंनृप ११

जो अनेक प्रकारके प्राणियोंमें एक मुझहीको देखता,भूतोंको नाशवान् और मुझे नित्य जानता है, हे राजन् ! वह सात्त्विक ज्ञान है ॥ ११ ॥

तेषु वेत्ति पृथग्भूतं विविधं भावमाश्रितः ॥
मामव्ययं च तज्ज्ञानं राजसं परिकीर्तितम् १२॥

और इन भूतोंसे मुझे पृथक् देखकर जो अनेक भावका आश्रय करते हैं और अव्यय जानते हैं, इस ज्ञानका नाम राजसी है ॥ १२ ॥

हेतुहीनमसत्यं च देहात्मविषयं च यत् ॥
असदल्पार्थविषयं तामसं ज्ञानमुच्यते ॥ १३ ॥

हेतुरहित, असत्य, तथा देह और आत्माको एक मानना, क्रूर और थोडे अर्थयुक्त विषयोंमें लगना इस ज्ञानका नाम तामसी है ॥ १३ ॥

भेदतस्त्रिविधं कर्म विद्धि राजन्मयेरितम् ॥
कामनाद्वेषदम्भैर्यद्रहितं नित्यकर्म यत् ॥ १४ ॥

हे राजन्! सत,रज,तम इन भेदोंसे कर्म भी तीन प्रकारका है कामना,द्वेष और दंभरहित जो नित्य कर्म है ॥ १४ ॥

कृतं विना फलेच्छां यत्कर्म सात्त्विकमुच्यते ॥
यद्बहुक्लेशतः कर्म कृतं यच्च फलेच्छया ॥ १५ ॥

और फलकी इच्छा रहित जो कर्म किया जाता है, वह सात्त्विक कहाता है और जो बहुत क्लेश तथा फलकी इच्छासे किया है ॥ १५ ॥

क्रियमाणं नृभिर्दम्भात्कर्म राजसमुच्यते ॥
अनपेक्ष्य स्वशक्तिं यदर्थक्षयकरं च यत् ॥१६॥

और जिसको मनुष्य दंभपूर्वक करते हैं वह राजसी कर्म कहाता है और जो अपनी शक्तिके बाहर तथा अर्थका क्षय करनेहारा कर्म किया जाता है ॥ १६ ॥

अज्ञानात्क्रियमाणं यत्कर्म तामसमीरितम् ॥
कर्तारं त्रिविधं विद्धि कथ्यमानं मया नृप ।१७॥

तथा जो अज्ञानसे कर्म किया जाता है वह तामसी कहाता है, इसी प्रकार हे राजन् ! तीन प्रकारके कर्ता होते हैं ॥१७॥

धैर्योत्साही समोऽसिद्धौसिद्धौ चाविक्रियस्तुयः।
अहंकरविमुक्तो यः स कर्ता सात्त्विको नृप १८।

हे राजन् ! धैर्य उत्साह युक्त सिद्धि असिद्धिमें समान दृष्टि-वाले, विकार और अहंकार रहित सात्त्विकी कर्ता कहाते हैं १८

कुर्वहर्न्षं च शोकं च हिंसां फलस्पृहां च यः ॥
अशुचिर्लुब्धको यश्च राजसोऽसौ निगद्यते १९॥

जो हर्ष शोक सहित कर्म करते, हिंसा और फलमें इच्छा रखते हैं, जिनमें अपवित्रता और लोभ है, वह राजसी कर्ता कहे जाते हैं ॥ १९ ॥

प्रमादाज्ञानसहितः परोच्छेदपरः शठः ॥
अलसस्तर्कवान्यस्तु कर्ताऽसौताम सो मतः २०

प्रमाद और अज्ञान सहित दूसरोंके नाश करनेहारे मूर्ख आलसी और जो तर्क करनेवाले हैं वे तामसी कर्ता हैं॥२०॥

सुखं च त्रिविधं राजन्दुःखं च क्रमतः शृणु ॥
सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च मयोच्यते २१॥

हे राजन् ! इसी प्रकार सुख दुःखभी तीन प्रकारके हैं, वह तुम क्रमसे सुनो, इनकेभी सात्विक, राजस, तामस भेद हैं सो मैं कहता हूं ॥ २१ ॥

विषवद्भासते पूर्वं दुःखस्यान्तकरं च यत् ॥
इच्छमानं तथा वृत्त्या यदन्तेऽमृतवद्भवेत् २२॥

जो पहले तौ विषकी समान प्रतीत हो और दुःखका अन्त करनेवाला हो और मनोवृत्तिसे इच्छा किया हुआ जो अन्तमें अमृतकी समान हो ॥ २२ ॥

प्रसादात्स्वस्य बुद्धेर्यत्सात्त्विकं सुखमीरितम् ॥
विषयाणां तु यो भोगो भासतेऽमृतवत्पुरा २३॥

और जो अपनी बुद्धिको प्रसन्न करनेहारा हो,वही सात्विक सुख वर्णन किया है, और जो विषयोंका भोग प्रथम तौ अमृतकी समान विदित हो ॥ २३ ॥

हालाहलमिवान्ते यद्राजसं सुखमीरितम् ॥
तन्द्राप्रमादसंभूतमालस्यप्रभवं च यत् ॥ २४ ॥

और अन्तमें विषकी समान फल दे, उसे राजसी सुख कहते हैं, और जो तन्द्रा तथा प्रमादसे उत्पन्न हुआ और जो आलस्यसे हुआ है ॥ २४ ॥

सर्वदा मोहकं स्वस्य सुखं तामसमीदृशम् ॥
न तदस्ति यदेतैर्यन्मुक्तं स्यात्रिविधैर्गुणैः॥२५॥

तथा जो अपनेको सदा मोह करता है, उसका नाम तामसी सुख है, ऐसा कोई भी प्राणी नहीं जो इन तीनों गुणोंसे मुक्त हो ॥ २५ ॥

राजन्ब्रह्मापि त्रिविधमोंतत्सदिति भेदतः ॥
त्रिलोकेषु त्रिधाभूतमखिलं भूप वर्तते ॥ २६ ॥

हे राजन्! ब्रह्म भी तौ (ॐ) (तत्) (सत्) इस भेदसे तीन प्रकारका है, हे राजन् ! वह तीन प्रकारसे ब्रह्म त्रिलोकीमें व्याप्त है ॥ २६ ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः स्वभावाद्भिन्नकर्मिणः ॥
तानि तेषां तु कर्माणि संक्षेपात्तेऽधुना वदे ॥२७॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यह स्वभावसेही भिन्न २ कर्म करनेवाले हैं, इनके कर्म संक्षेपसे मैं तुमसे कहताहूं ॥ २७ ॥

अन्तर्बाह्येन्द्रियाणां च वश्यत्वमार्जवं क्षमा ॥
नानातपांसि शौचं च द्विविधं ज्ञानमात्मनः २८

बाह्य और अन्तर इन्द्रियोंका वश करना, सरलता, क्षमा, अनेक प्रकारके तप, पवित्रता, दोनों प्रकार आत्माकी ज्ञान २८॥

वेदशास्त्रपुराणानां स्मृतीनां ज्ञानमेव च ॥
अनुष्ठानं तदर्थानां कर्म ब्राह्ममुदाहृतम् ॥ २९ ॥

वेद शास्त्र पुराण और स्मृतियोंका ज्ञान होना और उनके अर्थोंका अनुष्ठान करना, यह ब्राह्मणके कर्म हैं ॥ २९ ॥

दार्ढ्यं शौर्यं च दाक्ष्यं च युद्धे पृष्ठाप्रदर्शनम् ॥
शरण्यपालनं दानं धृतिस्तेजः स्वभावजम् ३०

दृढता, शूरता, चतुरता, युद्धसे पलायन न करना, शरणागतकी रक्षा, दान, धैर्य, स्वाभाविक तेज ॥ ३० ॥

प्रभुता मन औन्नत्यं सुनीतिर्लोकपालनम् ॥
पञ्चकर्माधिकारित्वं क्षात्रं कर्म समीरितम् ३१॥

प्रभुता, मनकी उदारता, अच्छीनीति, लोकपालन इन पांचकर्मोंमें अधिकार यह क्षत्रियोंका स्वाभाविक कर्म है ॥ ३१ ॥

नानावस्तुक्रयो भूमेः कर्षणं रक्षणं गवाम् ॥
त्रिधाकर्माधिकारित्वंवैश्यकर्म समीरितम् ३२॥

अनेक प्रकारकी वस्तुओंका क्रय, विक्रय, पृथ्वीकर्षण अर्थात् खेती आदि करना, गायोंकी रक्षा करना, इन तीन प्रकारके कर्मोंमें वैश्यका अधिकार है, यही वैश्यके कर्म हैं ॥३२॥

दानं द्विजानां शुश्रूषा सर्वदा शिवसेवनम् ॥
एतादृशं नरव्याघ्र कर्म शौद्रमुदीरितम् ॥ ३३ ॥

दान, ब्राह्मणोंकी सेवा, सदाशिवजीकी सेवा, हे राजन् । यह शूद्रोंका स्वकर्म वर्णन किया ॥ ३३ ॥

स्वस्वकर्मरता एते मय्यर्प्याखिलकारिणः ॥
मत्प्रसादात्स्थिरं स्थानं यान्ति ते परमं नृप३४

यह सब वर्ण अपने अपने कर्म यथावत् करते हुए और सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए मेरी कृपासे निश्चल परम स्थानको गमन करते हैं ॥ ३४ ॥

इति ते कथितो राजन्प्रसादाद्योग उत्तमः ॥
सांगोपांगःसविस्तारोऽनादिसिद्धो मया प्रिय३५

हे राजन् इस प्रकार तेरे स्नेहसे अंग उपांग सहित विस्तार पूर्वक अनादि सिद्धयोग वर्णन किया, यह योग परमोत्तम है ३५

युंक्ष्व योगं मयाख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्नृप ॥
गोपयैनं ततः सिद्धिं परां यास्यस्यनुत्तमाम् ३६

हे राजन् ! इस मेरे कहे योगको धारण करो और किसीसे इसे मत कहो,जो तुम इसे गुप्त रक्खोगे तो परम उत्तम सिद्धिको प्राप्त होगे ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच ।

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नस्य महात्मनः ॥
गणेशस्य वरेण्यः स चकार च यथोदितम् ३७॥

व्यासजी बोले इस प्रकार प्रसन्नचित्त महात्मा गणेशजीके वचन सुनकर राजा वरेण्य उनके वचनके अनुसार करता हुआ ॥ ३७ ॥

त्यक्त्वा राज्यं कुटुम्बं च कान्तारंप्रययौ रयात् ।
उपदिष्टं यथा योगमास्थाय मुक्तिमाप्तवान् ३८॥

राज्य और कुटुम्बको त्यागनकर वेगसे वनको चलागया, उपदेश किये योगमें यथास्थित हो मुक्त होगया ॥ ३८ ॥

इमं गोप्यतमं योगं शृणोति श्रद्धया तु यः॥
सोऽपिकैवल्यमाप्नोति यथा योगी तथैव सः ३९

इस महागुप्त योगको जो कोई श्रद्धासे श्रवण करता है,वह भी मुक्तिको प्राप्त होजाता है, जिस प्रकार योगी होते हैं॥३९॥

य इमं श्रावयेद्योगं कृत्वा स्वार्थं सुबुद्धिमान् ॥
यथा योगी तथा सोऽपि परं निर्वाणमृच्छति४०

जो बुद्धिमान् इस योगको स्वार्थके निमित्त भी सुनाता है वह भी योगीकी समान मुक्त होजाता है ॥ ४० ॥

यो गीतां सम्यगभ्यस्य ज्ञात्वा चार्थं गुरोर्मुखात्।
कृत्वा पूजां गणेशस्य प्रत्यहं पठते तु यः॥४१॥

जो इस गीताको भलीप्रकार अभ्यास कर गुरुमुखसे इसका अर्थ जानकर गणेशकी पूजाकर प्रतिदिन पाठ करता है॥४१॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि यः पठेत् ॥
ब्रह्मीभूतस्य तस्यापि दर्शनान्मुच्यते नरः ४२॥

जो एक काल दो काल वा तीनों कालमें इसको पढता है वह ब्रह्म स्वरूपको प्राप्त होजाता है, उसके दर्शनसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ४२ ॥

न यज्ञैर्न व्रतैर्दानैर्नाग्निहोत्रैर्महाधनैः ॥
न वेदैः सम्यगभ्यस्तैः सम्यग्ज्ञातैःसहाङ्गकैः ४३

न यज्ञ, न व्रत, न दान, न अग्निहोत्र, न महाधन, न वेदोंके उत्तम अभ्यास, न सांग ज्ञानसे ॥ ४३ ॥

पुराणश्रवणैर्नैव न शास्त्रैः साधुचिन्तितैः ॥
प्राप्यते ब्रह्म परममनया प्राप्यते नरैः ॥ ४४ ॥

न पुराणोंके श्रवणसे, न अच्छा चिंतन किये हुये शास्त्रोंसे ऐसी ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, जैसी इस गीतासे मनुष्यको प्राप्त होती है ॥ ४४

ब्रह्मघ्नो मद्यपस्तेयी गुरुतल्पगमोऽपि यः ॥
चतुर्णां यस्तु संसर्गी महापातककारिणाम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्महत्यारा, मद्यपी, चोर, गुरुदारगामी, चारों वर्णोंमें गमन करनेहारे तथा और भी महापाप करनेहारे ॥ ४५ ॥

स्त्रीहिंसागोवधादीनां कर्त्तारो ये च पापिनः ॥
ते सर्वे प्रतिमुच्यन्ते गीतामेतां पठन्ति चेत् ॥४६॥

स्त्रीहिंसा, गोवध करनेहारे तथा और भी पापी वे सब इस गीताके पढनेसे छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥

यः पठेत्प्रयतो नित्यं स गणेशो न संशयः ॥
चतुर्थ्यां यः पठेद्भक्त्या सोऽपिमोक्षाय कल्पते ॥४७॥

जो नियमसे इसे नित्य पढते हैं वह निःसन्देह गणेश हैं, और जो चतुर्थीके दिन भक्तिसे पढते हैं, वहभी मुक्त हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

तत्तत्क्षेत्रं समासाद्य स्नात्वाभ्यर्च्य गजाननम् ॥
सकृद्गीतां पठन्भक्त्या ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥४८॥

उनउन क्षेत्रोंमें प्राप्त होकर स्नानकर गणेशजीका पूजन कर एकवारभी भक्तिसे गीताका पाठ करै तौ, ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

भाद्रे मासे सिते पक्षे चतुर्थ्यां भक्तिमान्नरः ॥
कृत्वा महीमयीं मूर्तिं गणेशस्य चतुर्भुजाम् ॥४९॥

भादोंके महीनेके शुक्ल पक्षमें चौथके दिन भक्तिपूर्वक मृत्तिकाकी चतुर्भुजी मूर्ति बनाकर ॥ ४९ ॥

सवाहनां सायुधां च समभ्यर्च्य यथाविधि ॥
यः पठेत्सप्तकृत्वस्तु गीतामेतां प्रयत्नतः॥५०॥

वाहन और आयुधसहित विधिपूर्वक पूजन करके,जो यत्नपूर्वक सातवार गीताका पाठ करता है ॥ ५० ॥

ददाति तस्य संतुष्टो गणेशो भोगमुत्तमम् ॥
पुत्रान्पौत्रान्धनं धान्यं पशुरत्नादिसंपदः ५१॥

उसको संतुष्ट होकर गणेशजी पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, पशु, रत्नादि संपत् और अनेक भोग प्रदान करते हैं ॥ ५१ ॥

विद्यार्थिनो भवेद्विद्या सुखार्थी सुखमाप्नुयात् ॥
कामानन्यॉंल्लभेत्कामी मुक्तिमन्तेप्रयान्तिते ५२

इति श्रीगणेशपुराणे श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीगजाननवरेण्यसम्वादे त्रिविध-वस्तुविवेकनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

श्रीगजाननार्पणमस्तु ॥

विद्यार्थी विद्या, सुखार्थी सुख, कामार्थी कामको प्राप्त होकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्गणेशगीतासूपनिषदर्थगर्भासु योगामृतार्थशास्त्रे श्रीमद्गजाननवरेण्यसंवादे कात्यायनगोत्रोद्भवकामेश्वरनाथ-संस्कृतपाठशालामुख्याध्यापकपंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृतभाषाटीकायां विविधवस्तुविवेकनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

व्योम बाण अरु अङ्क शशि, सम्वत्सर सुखदान ॥
पौषपूर्णिमा रविदिवस, पूर्ण कियो शुभज्ञान ॥
श्रीगणेशार्पणमस्तु. ।

हमारे यहाँसे प्रकाशित कुछ अन्य ग्रन्थ,

गणेशगीता - हिन्दी टीका

शिवगीता– हिन्दी टीका

देवीगीता–हिन्दी टीका

अष्टावक्रगीता–हिन्दी टीका

गुरुगीता-भाषा व्याख्या

आत्म बोध–भा. टी.

तत्व बोध–हिन्दी टीका

वेदान्त परिभाषा–शिखामणि और
मणिप्रभा – संस्कृत टीका

विचार सागर–पीताम्बर

वृत्रि प्रभाकर

सुन्दर विलास

विचार चन्द्रोदय

भगवद्-गीता-मूल ताबीजी

गोरक्ष पद्धति - हिन्दी टीका

बृहद्योग सोपान— हिन्दी टीका

शिव संहिता— हिन्दी टीका

शिव स्वरोदय - हिन्दी टीका

हठयोग प्रदीपिका - हिन्दी टीका

आन्हिक कर्म सूत्रावली (मूलमात्र)

सौभाग्य लक्ष्मी— भाषा टीका

ग्रह शांती— भाषाटीका

दवात पूजन

मंगलाष्टक शाखोच्चार

मूलशांति - मूल

वासिष्ठी हवन पद्धति-हिन्दी टीका

विष्णु पूजन विधि-हिन्दी टीका

विवाह सोपांगविधि— हिन्दी टीका

सर्वदेव प्रतिष्ठा प्रकाश– मूल

सकाम शिवपूजन विधान हिन्दीटीका

स्वस्तिवाचन (पूण्याहवाचन)

गरुडपुराण – (प्रेतकल्प)

कार्तिकमाहात्म्य (पद्मपुराणोक्त)

वा. रामायण सुन्दरकाण्ड (मूल)

चमत्कार चिन्तामणि-हिन्दी टीका

ज्योतिषसार– भाषाटीका

प्रश्न शिरोमणि– भाषाटीका

बालबोध ज्योतिष–

मुहूर्त चिन्तामणि भाषाटीका

मुहूर्त प्रकाश– भाषाटीका

विश्वकर्मा प्रकाश– भाषाटीका

अघोरीतन्त्र- भाषाटीका

अष्टसिद्धि भाषाटीका

1104
Acc 9908

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

पुस्तकें मिलने के स्थान :-

१. खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
सातवीं खेतवाड़ी खम्बाटा लेन
बम्बई–४०० ००४

२. गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्या बाई चौक, कल्याण,
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

३. खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ. प्र.)